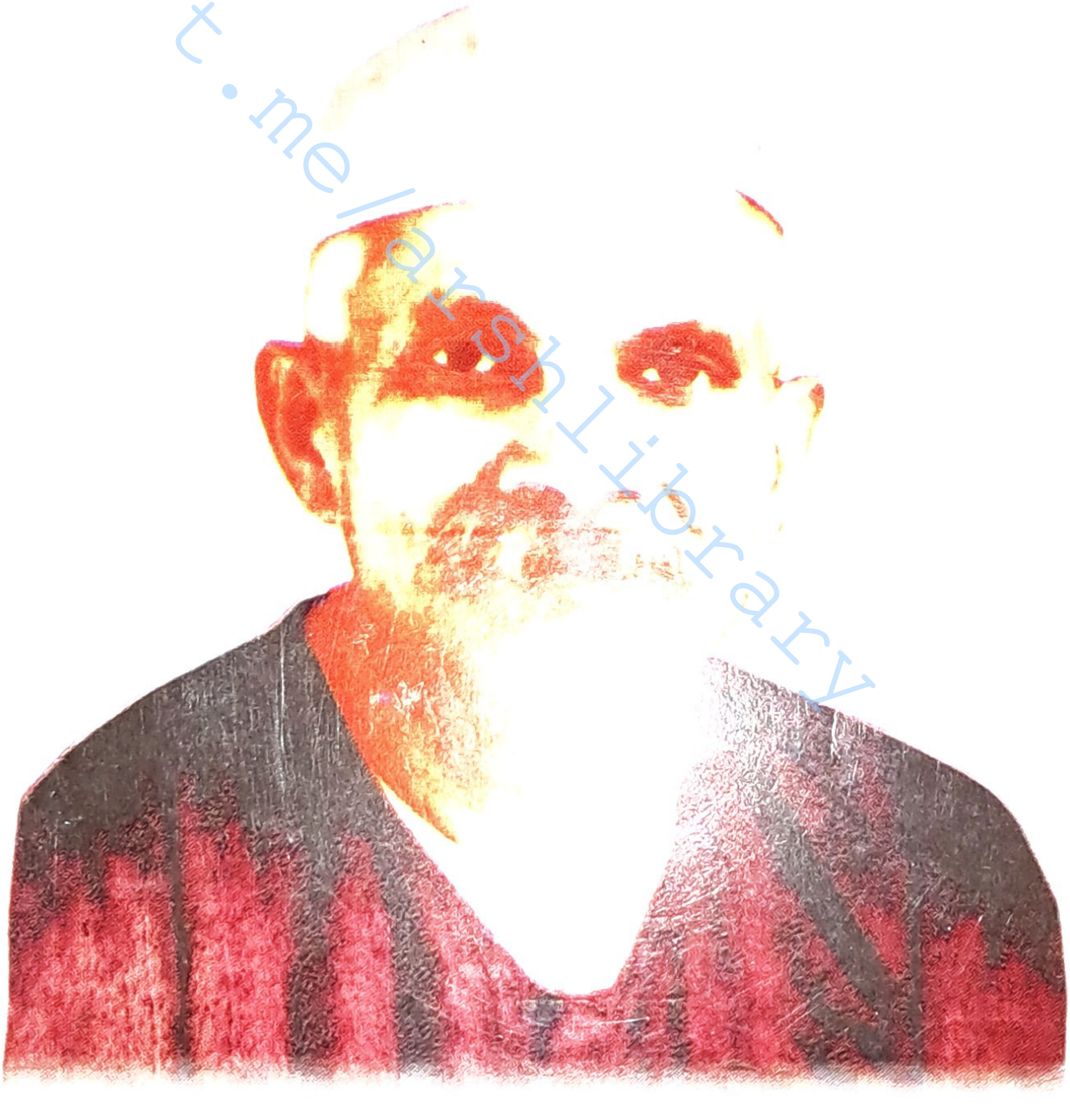
॥ ओ३म् ॥

प्रो० महेशप्रसाद मौलवी ग्रन्थावली



मौ० महेशप्रसाद

–प्रो० (डॉ०) भवानीलाल भारतीय

चिंतक एवं लेखक मोक्षराज जी को सादर भेंट
भवानीलाल भारतीय 8/1/15

॥ ओ३म् ॥

प्रो. महेशप्रसाद मौलवी ग्रन्थावली

१. महर्षि दयानन्द सरस्वती (जीवन चरित)
२. चौदहवें समुल्लास पर वक्तव्य
३. ऋषि दयानन्द सरस्वती के स्थानान्तर में आगमन-प्रतिगमन की तिथि और तारीख

सम्पादक :-

प्रो० (डॉ०) भवानीलाल भारतीय

प्रकाशक :

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास

हिण्डौन सिटी (राज०)-३२२ २३०

प्रकाशक	: **श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास** 'अभ्युदय' भवन, अग्रसेन कन्या महाविद्यालय मार्ग, स्टेशन रोड, हिण्डौन सिटी, (राज०)- ३२२ २३० चलभाष : ०९४१४०३४०७२, ०९८८७४५२९५९ Email-aryaprabhakar@yahoo.com
संस्करण	: सन् २०१३ ई०
मूल्य	: ८०.०० रुपये
लेजर टाईपसेटिंग	: **आर्य लेजर प्रिंट्स**, हिण्डौन सिटी, राजस्थान
मुद्रक	: **राधा प्रेस**, कैलाश नगर, दिल्ली-११० ०३१



श्री शिवकुमारजी चौधरी

इन्दौर (म०प्र०)

आपने इस पुस्तक के प्रकाशन में आर्थिक सहयोग किया है। हम आपके सुखी और समृद्ध जीवन की कामना करते हैं। इस सहयोग हेतु हम आपका हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

—प्रभाकरदेव आर्य

विषय-क्रम

सम्पादकीय

उन्नीसवीं शताब्दी के महान् सुधारक तथा भारतीय नवजागरण के प्रमुख सूत्रधार ऋषि दयानन्द के जीवनवृत्त का संग्रह करने तथा उसे ग्रन्थाकार रूप देने में पं० लेखराम तथा पं० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के काम एवं साधना से पाठक परिचित है। इसी कार्य को आगे बढ़ानेवाले काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में गत शती के चालीस के दशक में कार्यरत प्रो० महेशप्रसाद मौलवी आलिम फाज़िल के कार्य से सामान्य पाठक परिचित नहीं हैं। उन्होंने दयानन्द सरस्वती के जीवन तथा कृतित्व की जानकारियाँ प्राप्त करने में पर्याप्त काम तथा समय लगाया जो पुस्तकाकार प्रकाशित भी हुआ। तथापि वे ऋषि का सम्पूर्ण एवं सर्वांगीण जीवन चरित नहीं लिख पाये। आज तो उनके ये ग्रन्थ अप्राप्य हैं।

मौलवीजी के कार्य को एक बार पुनः पाठकों के समक्ष लाने का यह एक विनम्र प्रयास है। यदि उनके अवशिष्ट ग्रन्थ भी हमें उपलब्ध होंगे तो इस ग्रन्थावली का दूसरा भाग प्रकाशित किया जायेगा। इस प्रकाशन में आर्थिक सहायता श्री शिवकुमारजी चौधरी (इन्दौर) से प्राप्त हुई है तदर्थ उनका आभार जताना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है। इस ग्रन्थ में जो लेखक की पाद टिप्पणियाँ हैं वे उसी पृष्ठ में है जब कि सम्पादकीय टिप्पणियों को अंग्रेजी वर्णमाला के वर्णों के अनुसार ग्रन्थान्त में पृथकशः दिया गया है। 'श्री घूडमल प्रहलाद-कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास' के संचालक श्री प्रभाकरदेव आर्य ने इस दुर्लभ ग्रन्थ को सुलभ किया, एतदर्थ उनका आभार।

वैशाख कृ० अष्टमी २०७० वि० —**भवानीलाल भारतीय**

शंकर कॉलोनी, श्रीगंगानगर

प्राक्कथन

प्रो० महेशप्रशाद के साहित्य से मेरा प्रथम परिचय तब हुआ था जब मैं जसवन्त कॉलेज जोधपुर में बी०ए० का छात्र था। मेरे नगर के महावीरसिंह गहलोत बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से नये-नये एम०ए०, एल० एल० बी० होकर आये थे। बनारस से विदाई लेते समय वे प्रो० महेशप्रसाद की लिखी ऋषि दयानन्द सम्बन्धी कुछ लघु रचनाएं तथा भारत का वह नक्शा भी लेते आये थे जिसमें प्रो० महेशप्रसाद ने ऋषि दयानन्द के भारत भ्रमण को निर्दिष्ट किया था। उस मानचित्र को उन्होंने '**दयानन्दावर्त्त**' का शीर्षक दिया था तथा इसमें देश के उन स्थानों को निर्दिष्ट किया था जिन्हें महर्षि ने अपने पावन चरणों से पवित्रीकृत किया था। वर्षों तक यह मानचित्र काँच के फ्रेम में जड़ा रहा और आर्यसमाज नगर, जोधपुर के सभा भवन को सुशोभित करता रहा। प्रो० महेशप्रसाद के इन लघु ग्रन्थों के शीर्षक आकर्षक तो थे ही, वे परिपूर्ण तथ्यों तथा जानकारी से भरे थे। **ऋषि दयानन्द और कुरान, सर सैयद और ऋषि दयानन्द, ऋषि दयानन्द : कब, कहाँ ?, ऋषि दयानन्द के काल में रेलमार्ग, गाय और कुरान, बक़रईद** आदि पुस्तकों के शीर्षक ही ऐसे थे जो पाठक के ध्यान को सहज ही आकृष्ट करते थे। इन्हें लिखने में लेखक का परिश्रम तथा शोध दृष्टि प्रकट हुई थी।

कालान्तर में जब महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की कई खण्डों में प्रकाशित आत्मकथा को पढ़ने का अवसर मिला तो आगरा के आर्य मुसाफिर विद्यालय तथा वहाँ के अध्ययनशील वातावरण, वहाँ प्रो० महेशप्रसाद तथा डॉ० लक्ष्मीदत्त शर्मा (विद्यालय के संस्थापक पं० भोजदत्त शर्मा के पुत्र) जैसे दिग्गज अध्यापकों की उपस्थिति की रोचक जानकारी मिली। राहुलजी ने अपने संस्मरणात्मक ग्रन्थ '**मेरे आराध्य**' में प्रो० महेशप्रसादजी के प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए 'भाई साहब' के आदरास्पद नाम से पुकारे जानेवाले

प्रो० महेशप्रसाद के निश्छल व्यक्तित्व तथा सादगी भरे जीवन की रम्य झाँकी दिखाई है। उन्होंने लिखा है कि 'भाई साहब' के प्रति मेरी भक्ति और आदर परा कोटि का था। उस समय तक मैं आस्तिक (ईश्वरवादी) था और मैंने परमात्मा के स्तवन में एक श्लोक लिखा था जिसमें परमात्मा को 'महेश' पद से सम्बोधित किया था। संस्मरण लिखने तक वह श्लोक राहुलजी को पूरा याद भी नहीं रहा, अन्तिम पंक्ति ही स्मरण रही—

'तं महेशं नौमि' उस महेश के प्रति मेरा नमन है। राहुलजी लिखते हैं कि, ''श्लोक में प्रयुक्त '**महेश**' शब्द मेरे लिए दो अर्थ देता था। इसमें जहाँ परमात्मा के प्रति नमस्कार का भाव था वहाँ प्रो० महेशप्रसाद के प्रति भी मैंने अपना सम्मान व्यक्त किया था।'' ऐसे थे **भाई साहब महेशप्रसाद** जो ओरियण्टल कॉलेज लाहौर में अरबी-फारसी का अध्ययन करते समय वहाँ के मुसलमान अध्यापकों तथा छात्रों के प्रीति पात्र रहे तथा आलिम फ़ाज़िल का उपाधि प्राप्त करनेवाले प्रथम हिन्दू थे। कालान्तर में मैं आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के महोपदेशक पं० रामसहाय शर्मा से भी महेशप्रसादजी की कीर्तिगाथा अनेक बार सुनता रहा। वे भी उक्त विद्यालय के छात्र रहे थे।

आज तो प्रो० महेशप्रसाद के अनेक ग्रन्थ सुलभ नहीं हैं। उनके दुबारा प्रकाशित होने का अवसर ही नहीं आया। मात्र साठ वर्ष की आयु में १९५१ में भाई साहब का निधन हो गया।

वे मेरी युवावस्था के दिन थे। आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द विषयक साहित्य को पढ़ने का मुझे नशा-सा था। जोधपुर आर्यसमाज (नगर) का सारा पुस्तकालय मथ डाला, एक-एक ग्रन्थ को पढ़ा। उसी समय से ऋषि दयानन्द के कृतित्व तथा जीवन के समग्र अध्ययन तथा इन पर व्यापक लेखन का जो कार्य आरम्भ किया वह आज तक जारी है। प्रो० महेशप्रसाद से पहले मैं पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय के लेखन से परिचित हो चुका था। उनके 'आस्तिकवाद' तथा 'मैं और मेरा भगवान्' आदि दार्शनिक ग्रन्थ मेरे अध्ययन की परिधि में आ चुके थे। ये दोनों इलाहाबाद वासी आर्य विद्वान् मेरे भी आराध्य बन चुके थे। उन्हीं दिनों की बात है। नगर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में किन विद्वानों को बुलाया जाये? मन्त्री ने जब मुझसे सम्मति माँगी तो

मैंने उपाध्यायजी तथा महेशप्रसादजी के नामों का सुझाव दिया। दोनों को पत्र लिखे गये। सम्भवत: उनकी स्वीकृति भी आई, किन्तु कारणवश दोनों ही नहीं आ पाये। महेशप्रसादजी तो शीघ्र ही दिवंगत हो गये और उपाध्यायजी से मात्र एक बार १९५९ में भेंट हुई जब ऋषि दयानन्द की दीक्षा शताब्दी के समारोह में उन्हें मथुरा में सम्मानित किया गया था। यह आयोजन पं० प्रकाशवीर शास्त्री की सूझ-बूझ का परिणाम था।

काश! मौलवी महेशप्रसाद को कुछ अधिक आयु मिलती और वे ऋषि दयानन्द का एक खोजपूर्ण, विस्तृत विवेचनायुक्त सर्वांगीण जीवन-चरित लिखते, किन्तु नियति को यह मंज़ूर नहीं था। इसे विधि विडम्बना ही कहा जायेगा कि न तो पं० लेखराम अपनी लेखनी से ऋषि के जीवन को पूरा कर सके (यह काम उनके बलिदान के बाद पं० आत्माराम अमृतसरी ने किया) और न ऋषि जीवन के महान् अन्वेषक देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ही अपने शोध के परिणामों को प्रामाणिक जीवनी के रूप में पेश कर सके। उनकी लिखी अधूरी ऋषि गाथा को कालान्तर में मेरठ वासी पं० घासीराम ने पूरा किया था। इसी प्रकार प्रो० महेशप्रसाद ने भी ऋषि दयानन्द का विशद और प्रामाणिक जीवन-चरित लिखने की आधार भूमि तो तैयार कर ली थी, इसका Ground Work भी पूरा कर लिया था, किन्तु यह महत् कार्य उनकी लेखनी से पूरा नहीं हो सका।

तथापि प्रो० महेशप्रसाद का दयानन्द के जीवन विषयक तथ्यों के संग्रह का कार्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। अरबी-फारसी के उत्कृष्ट विद्वान् होने के कारण वे दयानन्द द्वारा कुरान और इस्लाम की समालोचना पर प्रामाणिक, तथ्यपूर्ण तथा निर्दोष होने का प्रमाणपत्र लगाने में सफल हुए। दयानन्द के भारत देश भ्रमण का काल-क्रम तथा स्थान-क्रम निर्धारित कर उन्होंने एक ऐसा कार्य कर दिखाया जो अत्यन्त आवश्यक तथा महत्त्व का था। जब दयानन्द की एक जाली और कल्पित जीवनी (अज्ञात जीवन-चरित) का हल्ला मचा और किसी बंगाली विद्वान् तथा उनके अन्ध भक्तों ने स्वामी दयानन्द की तिब्बत, रामेश्वरम् तथा श्रीलंका की मिथ्या यात्राओं को उछाला तो मैं ही प्रथम और अन्तिम व्यक्ति था जिसने निर्व्याज भाव से

घोषित किया कि ऋषि का यात्रा–क्रम वही सत्य है जो प्रो० महेशप्रसाद द्वारा निर्धारित किया गया है तथा जिसे पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने प्रामाणिक स्वीकार किया है।

सच पूछें तो पं० लेखराम एवं पं० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के पश्चात् प्रो० महेशप्रसाद ही वे अन्वेषी थे जिन्होंने ऋषि दयानन्द के जीवनविषयक तथ्यों के निर्धारण में रुचि ली। ऋषि के जीवन–चरित का कालक्रम, एवं स्थानक्रम निर्धारत किया, स्वयं अरबी के पण्डित होने के कारण ऋषि दयानन्द के इस्लाम और कुरान विषयक लेखन एवं आलोचन की प्रामाणिकता को सिद्ध किया। यह उनका तृणमूल स्तर (Ground Level Work) का कार्य था जिसके आधार पर युग–द्रष्टा एवं युग निर्माता दयानन्द के महान् जीवन का विशद लेखन सम्भव होता।

प्रो० महेशप्रसाद दिवंगत हो गये, ऋषि के समग्र एवं परिपूर्ण जीवन–चरित लेखन की उनकी अभिलाषा पूरी नहीं हो सकी, किन्तु इन पंक्तियों के लेखक ने ऋषि की निर्वाण शताब्दी के अवसर पर १९८३ में इस महत् अनुष्ठान की यत् किञ्चित पूर्ति '**नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती**' शीर्षक से महाराज के विस्तृत जीवन–चरित को लिख कर पूरी की। यह अतिरिक्त प्रसन्नता की बात है कि इसी जीवनी का संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धार्मिक ट्रस्ट ने गत वर्ष १००० पृष्ठों में (दो खण्डों में) प्रकाशित किया है। प्राय: विस्मृत प्रो० महेशप्रसाद की इन दुर्लभ रचनाओं को पुन: प्रकाश में लाने का श्रेय भी इसी ट्रस्ट एवं उसके सुयोग्य संचालक श्री प्रभाकरदेव आर्य को है। एतदर्थ वे हम सबके धन्यवाद के पात्र हैं।

भवानीलाल भारतीय

शरद् पूर्णिमा २०६७ वि०
शान्ति निकेतन,
३/५ शंकर कॉलोनी, श्री गंगानगर

ऋषि दयानन्द के जीवन के अन्वेषण के सन्दर्भ में प्रो० महेशप्रसाद, मौलवी आलिम फाज़िल का जीवन एवं कार्य

संसार के महापुरुषों के जीवन विचारशील मानव समुदाय के अध्ययन तथा मनन की वस्तु रहे हैं। भारतीय नवजागरण के प्रथम सूत्रधार तथा ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजा राममोहन राय का जीवन-चरित एक विदेशी महिला सोफिया डॉबसन कालेट ने विशेष परिश्रम तथा शोधपूर्ण अनुसंधान के पश्चात् लिखा था। श्री रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द, गुरु-शिष्य की जीवनी प्रसिद्ध फ्रैंच लेखक रौमां रौलां ने लिखी। युग पुरुष महात्मा गाँधी की जीवनी के लेखन के यों तो अनेक प्रयास हुए हैं, किन्तु डी०जी० तेदुंलकर ने अनेक खण्डों में गाँधी चरित लिख कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। अंग्रेजी के महान् साहित्यकार तथा कोश प्रणेता डॉ० सैमुऊल जॉनसन की जेम्स बासवेल लिखित जीवनी अंग्रेजी साहित्य में अद्वितीय स्थान रखती है।

उन्नीसवीं शती में भारत में भारत में जो एक अभिनव धार्मिक-सामाजिक चेतना उत्पन्न हुई उसमें आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का योगदान सर्वथा अपूर्व तथा प्रभावी रहा है। उनके निधन के कुछ समय पश्चात् ही उनके जीवन-चरित लेखन का कार्य मनोयोग पूर्वक प्रारम्भ किया गया था, किन्तु इस महत् कार्य में नाना व्यवधान तथा बाधाएँ आने के कारण वह वैसा सफल नहीं हुआ जैसी कि अपेक्षा की गई थी। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने स्वामीजी की जीवनी लिखने का कार्य एक मनस्वी पुरुष पं० लेखराम को सौंपा, जिन्होंने अत्यन्त तत्परता तथा निष्ठापूर्वक जीवन लेखन में प्रयुक्त होनेवाली उपादानभूत सामग्री का संग्रह किया। इस कार्य की पूर्ति के लिए वे देश के उन-उन स्थानों पर गये जहाँ स्वामी दयानन्द का निवास रहा था, तत् तत् लोगों से मिले जो स्वामीजी के बारे में

बहुत कुछ जानते थे तथा उनके सम्पर्क में आये थे। उन्होंने स्वामीजी की चर्चा तथा उल्लेखों को छापने वाली पत्र-पत्रिकाओं का भी संग्रह किया तथा इस आधारभूत स्रोत सामग्री को लेकर जीवन लेखन के कार्य को आरम्भ ही किया था कि एक मतान्ध आततायी ने उनका प्राणहरण कर इस लोकोपकारी साहित्य यज्ञ में बाधा पहुँचाई। कालान्तर में पं० लेखराम द्वारा संचित उस सामग्री की सहायता से पं० आत्माराम अमृतसरी ने उर्दू में महर्षि दयानन्द के उस बृहत् जीवन-चरित को पूरा किया जो १८९७ में प्रथम बार लाहौर से प्रकाशित हुआ।

जिस वर्ष पं० लेखराम द्वारा एकत्रित स्रोत सामग्री पर आधारित उपर्युक्त उर्दू जीवनी छपी, उसी वर्ष बंगला के एक सुलेखक देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने अपनी मातृभाषा में दयानन्द-चरित का प्रकाशन किया। हमारे पास यह जानने का कोई प्रमाण नहीं है कि मुखोपाध्यायजी ने पं० लेखराम रचित (वस्तुतः) आत्माराम अमृतसरी द्वारा सम्पादित) स्वामीजी के उर्दू जीवन-चरित को देखा था या नहीं। लगता है कि उन्होंने मुख्यतः स्वामीजी की आत्म कथा (पूना प्रवचन क्रम का अन्तिम व्याख्यान तथा थियोसोफिस्ट पत्र में तीन किस्तों में छपी उनकी आत्मकथा), फर्रुखाबाद से प्रकाशित दयानन्द दिग्विजयार्क (३ खण्ड) तथा पत्र-पत्रिकाओं में इतस्ततः प्रकाशित विवरणों से सहायता लेकर ही इस ग्रन्थ को लिखा था। वे स्वयं भी इस तथ्य से अभिज्ञ थे कि अभी दयानन्द के जीवन विषयक तथ्यों की खोज की अपार सम्भावनाएँ हैं तथा यह कार्य तभी सन्तोषजनक ढंग से पूरा होगा जब जीवनी लेखन में सहायता पहुँचाने वाले सारे स्रोतों का पता लगाया जाएगा तथा तद्विषयक सारी सामग्री को एकत्र कर लिया जाएगा।

दयानन्द की जीवनी के लेखन को ही अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य बनाने वाले इस बंगाली लेखक ने अगले पन्द्रह वर्ष जीवन-चरित विषयक सामग्री को एकत्र करने में लगाये। इस अवधि में उन्होंने देश का कोई नगर-कस्बा या प्रान्त नहीं छोड़ा जहाँ दयानन्द स्वल्प या दीर्घकाल तक रहे। उन्होंने उन लोगों से प्रत्यक्ष सम्पर्क किया, जो स्वामीजी को प्रत्यक्ष देखने वाले थे, उनके सम्पर्क में आये

थे, उनका शिष्यत्व ग्रहण कर चुके थे अथवा उनके प्रशंसक थे। ऐसे अनेक लोगों से उन्होंने पत्राचार द्वारा दयानन्द विषयक जानकारी प्राप्त की जो इस महापुरुष के बारे में बहुत कुछ बताने की शक्यता रखते थे। उन्होंने हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, संस्कृत, गुजराती, मराठी तथा बंगला भाषाओं के पत्रों में छपे दयानन्द विषयक सन्दर्भों को भी एकत्रित किया। तत्पश्चात् वे इस सामग्री से सुसज्जित होकर काशी आये और जीवनी लेखन में प्रवृत्त हुए। दुर्भाग्य से अभी वे इस जीवन-चरित की विस्तृत भूमिका तथा चार अध्याय (मथुरा में अध्ययन) ही लिख पाये थे कि पक्षाघात के आक्रमण से १९१७ में उनका निधन हो गया। उनके मित्र पं० घासीराम मेरठ निवासी ने मुखोपाध्यायजी द्वारा एकत्रित ऋषि जीवनी की आधारभूत सामग्री को बनारस के जिलाधीश की सहायता से प्राप्त किया और इस बंगला साहित्यकार की लेखनी से रचित इस अधूरे जीवन-चरित को पूरा किया। दो खण्डों में पं० घासीराम द्वारा सम्पादित तथा लिखित इस बृहद् जीवन-चरित को १९३३ में अजमेर के आर्य साहित्य मण्डल (श्री मथुराप्रसाद शिवहरे द्वारा संचालित) ने प्रकाशित किया। कालान्तर में इसके अनेक संस्करण छपे।

ध्यातव्य है कि जब तक देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के अन्वेषण पर आधारित यह महर्षि जीवन-चरित प्रकाश में नहीं आया तब तक हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में स्वामी दयानन्द की जो जीवनियाँ लिखी गईं, वे मुख्यतया पं० लेखराम द्वारा संकलित उर्दू जीवन-चरित का आधार लेकर लिखी गई थीं। अनेक कारणों से पं० लेखराम द्वारा संकलित सामग्री पर आधारित इस उर्दू जीवनी में तथ्यों, तिथियों तथा व्यक्ति एवं स्थानों विषयक अनेक भूलें रह गई थीं। उदाहरणार्थ—अब तक यही लिखा जाता रहा कि ऋषि दयानन्द के पिता का नाम अम्बाशंकर तथा उनका जन्म-स्थान मोरवी (मोरवी राज्य की राजधानी) था। लाला लाजपतराय लिखित स्वामीजी की जीवनी (लालाजी की अंग्रेजी पुस्तक दि आर्यसमाज का एक अध्याय), बावा छज्जूसिंह लिखित स्वामीजी की अंग्रेजी जीवनी तथा रामविलास सारदा लिखित जीवनी आर्य धर्मेन्द्र जीवन में यही भूलें दोहराई गई हैं। देवेन्द्र बाबू ने अपने अनुसंधान के द्वारा यह पता लगाया था कि

मूलशंकर के पिता का नाम करसनजी तिवारी था और उनका जन्म-स्थान राजधानी मोरवी न होकर इस राज्य के अन्तर्गत टंकारा ग्राम है। इस प्रकार देवेन्द्रनाथ द्वारा संकलित सामग्री के आधार पर पं० घासीराम द्वारा सम्पादित ऋषि के बृहद् जीवन-चरित के १९३३ में प्रकाशित होने के उपरान्त दयानन्द के जो जीवन-चरित लिखे गये उनमें उक्त भूलों को सुधारा गया तथा मूलशंकर के पिता तथा उनके जन्म-स्थान का वास्तविक नाम (करसनजी तिवारी तथा टंकारा) दिया जाने लगा। ऋषि की जीवनी के कतिपय तथ्यों का अनुसंधान करने में स्वामी सत्यानन्द (दयानन्दप्रकाश के लेखक) तथा आचार्य रामदेव का भी योगदान रहा है। तथापि यह कहना भी तथ्यपूर्ण है कि स्वामी सत्यानन्द को कुछ लोगों ने ऋषि जीवन सम्बन्धी भ्रान्त बातों तथा किंवदन्तियों से भ्रमित किया, फलतः उनके ग्रन्थ दयानन्दप्रकाश में कुछ त्रुटियाँ जाने-अनजाने प्रविष्ट हो गई हैं। उदाहरणार्थ, ऋषि को विष देने वाले का नाम उन्हें 'जगन्नाथ' बताया गया तो यही नाम लोक प्रसिद्ध हो गया जब कि मुखोपाध्यायजी की शोध से विष देने वाले का नाम धूड़जी या धूलजी मिश्र ही यथार्थ है। यह व्यक्ति शाहपुरा (जिला-भीलवाड़ा) का निवासी था और उसे पाचक के रूप में शाहपुरा के राजा द्वारा स्वामीजी की सेवा में भेजा गया था। स्वामीजी के जोधपुर प्रवास के दौरान स्वामीजी का राजमहल में जाना तथा महाराजा जसवन्तसिंह द्वारा अपनी प्रेयसी नन्ही भगतन की पालकी को अविलम्ब हटाने के समय स्वयं कहार की भाँति कंधा लगाने की कथित घटना भी पूर्णतया भट्ट भणन्त (कल्पना प्रसूत) है।

उपर्युक्त विवेचन से एक तथ्य स्पष्ट होता है कि ऋषि दयानन्द के यथार्थ जीवन वृत्त के तथ्यों का संग्रह करने में सर्वाधिक योगदान पं० लेखराम तथा बंगला लेखक देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय का रहा है। यदि ये दोनों व्यक्ति अपने श्रम, साधना और लगन के साथ स्वामीजी की जीवनी के विच्छिन्न सूत्रों को एक माला में पिरोने का कार्य नहीं करते तो इस महापुरुष के जीवन वृत्त तथा कार्य वृत्त को जानना हमारे लिए असम्भव ही रहता। ऋषि दयानन्द को लिखे गये पत्रों तथा उन्हें भेजे गये पत्रों का संकलन, अध्ययन और विवेचन भी जीवन-चरित को पूर्ण करने में सहायक था। ऋषि दयानन्द के नाम

भेजे गये पत्रों को संग्रह कर सर्वप्रथम महाशय मुन्शीराम जिज्ञासु ने सम्पादित किया। कालान्तर में पं० भगवद्दत्त तथा पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने ऋषि को लिखे गये तथा खुद उनके द्वारा लिखे गये पत्रों का संग्रह, सम्पादन किया। विभिन्न स्रोतों से इन पत्रों को प्राप्त करने में उन्हें चौधरी मामराजसिंह का अपूर्व सहयोग मिला। यदि चौधरी मामराजसिंह विभिन्न स्थानों पर जाकर तथा इन पत्रों को स्वाधिकार में रखने वाले व्यक्तियों से अनुनय विनय कर इन्हें मूल या प्रतिलिपि के रूप में प्राप्त नहीं करते तो इस बहुमूल्य सामग्री का काल कवलित हो जाना असम्भव नहीं था। इन पंक्तियों के लेखक ने कालान्तर में ऋषि दयानन्द को भेजे गये तथा उनके द्वारा लिखे गये सभी पत्रों का अध्ययन कर उनका विश्लेषणात्मक विवेचन ग्रन्थ रूप में किया। इस विवेचन से ऋषि के जीवन एवं कार्य के सम्बन्ध में अनेक नई जानकारियाँ प्राप्त हुईं तथा नवजागरण के पुरोधा, इस महापुरुष का व्यक्तित्व एवं चरित्र विश्लेषण अधिक सहज हो सका।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में किसी समय अरबी तथा फारसी के प्रोफेसर पद पर रहे प्रो० महेशप्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल का शोध कार्य स्वामी दयानन्द के जीवन के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डालता है। यों कहना चाहिए कि ऋषि के जीवन के अनेक प्रसंग, उनके द्वारा किये गये भ्रमण के अनेक स्थानों तथा उनके सम्पर्क में आये अनेक व्यक्तियों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी को एकत्र करने तथा लेखबद्ध करने का कार्य प्रो० महेशप्रसाद ने ही किया। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि इस नवीनतम शोध सामग्री की सहायता से स्वामीजी का एक परिपूर्ण जीवन-चरित लिखा जाये। यदि उनके जीवन की अवधि कुछ अधिक होती तो सम्भवतः यह काम वे स्वयं करते, किन्तु वे स्वजीवन में इसे नहीं कर सके। तथापि उन्होंने महर्षि दयानन्द सरस्वती शीर्षक एक मध्यम आकार का जीवन-चरित लिखा जिसमें उन्होंने खुद के अनुसंधान से प्राप्त तथ्यों का समावेश किया। यहाँ हम स्वल्प विस्तार में जाकर प्रो० महेशप्रसाद के संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त तथा उनके लेखन कर्म पर प्रकाश डालेंगे।

अरबी-फारसी के इस अद्वितीय विद्वान् का जन्म १७ नवम्बर १८९१ को इलाहाबाद जिले के फतहपुर ग्राम में एक कायस्थ परिवार

में हुआ। मैट्रिक पास करने के पश्चात् उनका विचार पुलिस के महकमे में थानेदार बनने का था, किन्तु इसी बीच उन्हें ज्ञात हुआ कि आगरा में पं० भोजदत्त शर्मा ने धर्मवीर पं० लेखराम की स्मृति में आर्य मुसाफिर विद्यालय की स्थापना की है, जहाँ छात्रों को विभिन्न मत-मतान्तरों के सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन तथा शास्त्रार्थ कला में पटुता प्राप्त करने की शिक्षा दी जाती है। अब वे पुलिस में जाने का विचार छोड़कर १ दिसम्बर १९१३ को इस मुसाफिर विद्यालय में प्रविष्ट हो गये। दो वर्ष तक यहाँ अध्ययन करने के पश्चात् वे यहाँ अध्यापन करने लगे। इसी वर्ष १९१५ में यहाँ रामउदारदास नामक एक व्यक्ति ने प्रवेश लिया जो आगे चल कर महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन के नाम से वाङ्मय जगत् में विख्यात हुए। पूर्वाश्रम में केदारनाथ पाण्डेय कहलाने वाले यही राहुलजी प्रो० महेशप्रसाद के आजीवन मित्र तथा प्रशंसक बने रहे। राहुलजी ने अपनी अनेक खण्डों में समाप्त आत्मकथा में आगरा के मुसाफिर विद्यालय तथा प्रो० महेशप्रसाद के अनेक रोचक संस्मरण लिखे हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के दिवंगत महोपदेशक पं० रामसहाय शर्मा (बाद में स्वामी ओम् भक्त) के मुख से राहुलजी तथा मौलवी महेशप्रसाद के अनेक संस्मरण सुने हैं। उक्त महोपदेशक भी उन्हीं दिनों मुसाफिर विद्यालय आगरा के छात्र रहे थे।

कुछ समय पश्चात् अरबी-फारसी का उच्चस्तरीय अध्ययन करने के लिए महेशप्रसाद लाहौर चले गये तथा वहाँ की प्रसिद्ध ओरियण्टल कॉलेज की मौलवी फाज़िल कक्षा में प्रवेश लिया। इस कक्षा में प्रविष्ट होने वाले वे प्रथम हिन्दू विद्यार्थी थे तथा पंजाब विश्वविद्यालय की अरबी की सर्वोच्च परीक्षा मौलवी फाज़िल पास करने वाले भी वे ही पहले हिन्दू थे। राहुलजी के शब्दों में ''मोटी चुटिया नंगे सिर पर धारण किये और खादी का मोटा कुर्ता तथा धोती पहने महेशप्रसादजी मुसलमानी वातावरण से प्रभावित आलिम कक्षा में कभी उपहास और अनादर के पात्र नहीं बने। शायद धार्मिक मतभेद होने पर भी धार्मिक सहिष्णुता उस युग में आज की अपेक्षा कहीं अधिक थी जब कि आज धर्मनिरपेक्षता का ढोल सबसे अधिक पीटा जाता है।''

मौलवी फाज़िल उत्तीर्ण करने के बाद वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अरबी-फारसी विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए। विचारों से वे दृढ आर्यसमाजी थे। उनका अवशिष्ट जीवन लेखन तथा इसी विश्वविद्यालय में अध्यापन में व्यतीत हुआ। इस बीच जब उनकी पुत्री कल्याणी देवी ने विश्वविद्यालय के वेद तथा पौरोहित्य पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने हेतु आवेदन किया तो जन्मना ब्राह्मण को ही वेदाध्ययन का अधिकारी मानने वाले इस विभाग के अध्यक्ष ने एक अब्राह्मण लड़की को इस विभाग में प्रवेश देने से मना कर दिया। आर्यसमाज के विद्वानों ने विश्वविद्यालय के संस्थापक पं० मदनमोहन मालवीय से भेंट कर उनसे निवेदन किया कि नारी का वेदाध्ययन शास्त्र विरुद्ध नहीं है और इसका निषेध वैचारिक असहिष्णुता तथा कूपमण्डूकत्व का ही द्योतक है। अन्ततः मालवीयजी के हस्तक्षेप से कल्याणी देवी को उक्त कक्षा में प्रवेश मिल गया। २९ अगस्त १९५१ को इलाहाबाद के रसूलाबाद मोहल्ले में प्रो० महेशप्रसाद का निधन हो गया।

प्रो० महेशप्रसाद का दयानन्द विषयक अनुसंधान तथा लेखन कार्य—

प्रो० महेशप्रसाद की स्वामी दयानन्द विषयक कृतियों को हम ऋषि जीवन को समग्र, परिपूर्ण तथा त्रुटि रहित बनाने में प्रयुक्त होने वाली शोध सामग्री कहें तो अनुपयुक्त नहीं होगा। अरबी-फारसी के ज्ञान का उन्होंने इस सन्दर्भ में प्रयोग किया तथा स्वामी दयानन्द द्वारा सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास में आई कुरान की समालोचना को दोष रहित बताया। उनके एतद् विषयक लेखन का विवरण इस प्रकार है—

१. महर्षि दयानन्द सरस्वती—(१९४१ ई० में प्रकाशित) दो खण्डों में विभक्त इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में ऋषि की संक्षिप्त जीवनी, उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों तथा पत्र व्यवहार का विवेचन है। एक अध्याय में ऋषि के सम्बन्ध में उल्लिखित मनोरञ्जक तथा विचित्र बातों का संग्रह है। दूसरे खण्ड में स्वामी दयानन्द के बाइबिल और कुरान विषयक आलोचना कार्य का सम्यक् परीक्षण है। साथ ही कुछ आवश्यक तथ्य भी दिये गये हैं।

२. महर्षि दयानन्द कब और कहाँ ? (१९४३ ई०) इस उपयोगी पुस्तिका में ऋषि के समस्त जीवन में उनके विभिन्न स्थानों पर आगमन-प्रत्यागमन का तिथिक्रम से निर्देश किया गया है। स्वामीजी के देश भ्रमण की यह महत्त्वपूर्ण तालिका है। कालान्तर में पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने इस सामग्री का समावेश स्वसम्पादित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापनों का परिशिष्ट' में किया तथा मौलवीजी द्वारा प्रकाशित तथ्यों में जो विसंवाद या त्रुटि उन्हें दिखाई पड़ी, पादटिप्पणी में उसका निराकरण भी किया। इसका एक संस्करण स्व० अमर स्वामी ने भी प्रकाशित किया था। ऋषि की जीवनचर्या के कालक्रम को निर्धारित करने में इसकी उपयोगिता निर्विवाद है।

३. महर्षि जीवनदर्शक—(१९४४ ई०) ऋषि के विभिन्न जीवन-चरितों में असावधानी वश आई अनेक भ्रान्तियों का निदर्शन इस ग्रन्थ में किया गया है। उदाहरणार्थ—अनेक स्थानों के नामों में आई भ्रान्तियों का निवारण आदि।

४. दयानन्द काल में रेल मार्ग—ध्यान रहे कि स्वामी दयानन्द का आरम्भकालीन भ्रमण पाँव पैदल ही होता रहा। १९०३ वि० में गृहत्याग के पश्चात् मथुरा, आगरा, हरिद्वार तथा गाङ्गेय तटवर्ती प्रदेश में भ्रमण करने तक वे पदचारी ही रहे। कालान्तर में उन्होंने रेलमार्ग का प्रयोग किया जो मृत्युपर्यन्त न्यूनाधिक रूप में रहा। इस दृष्टि से प्रारम्भ में अवधूत परिव्राजक तथा कालान्तर में देश विख्यात समाज-सुधारक और धर्माचार्य की भूमिका में रहे दयानन्द के देश भ्रमण की तथ्याधारित उपयोगी जानकारी देती हुई यह पुस्तिका लिखी गई है।

५. महर्षि का अपूर्व भ्रमण—ध्यान रहे कि स्वामीजी ने उत्तर में आज के पाकिस्तान के रावलपिण्डी से लगा कर महाराष्ट्र के सातारा नगर तक का तथा पूर्व में हावड़ा कलकत्ता से लेकर पश्चिम में राजकोट (स्वामी का जन्मस्थान टंकारा ग्राम इसी जिले में है) तक भ्रमण किया था। ऋषि के जीवन को विकृत करने वाले ग़ैर ज़िम्मेदार लोगों ने दयानन्द के तिब्बत तथा श्रीलंका तक जाने के मिथ्या संकेत अपने ग्रन्थों में किये जो सर्वथा अप्रामाणिक तथा भ्रमोत्पादक हैं।

६. सर सैयद अहमद और स्वामी दयानन्द—(१९४४ ई०) हिन्दू तथा मुस्लिम नवजागरण के पुरोधा इन दोनों महापुरुषों के पारस्परिक स्नेह सूत्रों की तलाश में लिखी यह जानकारी भरी पुस्तक ऐतिहासिक महत्त्व की है।

७. स्वामी दयानन्द और कुरान—(१९४३ ई०) सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास में लिखी गई कुरान की समीक्षा को सही सन्दर्भ में समझने में इस पुस्तक की उपयोगिता निर्विवाद है।

ऋषि के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए मौलवीजी ने निम्न ग्रन्थ लिखे–सत्यार्थप्रकाश की व्यापकता, सत्यार्थप्रकाश पर विचार, सत्यार्थप्रकाश विषयक भ्रम, अमर सत्यार्थप्रकाश तथा अंग्रेजी में दि इम्मोर्टल सत्यार्थप्रकाश। इस्लाम के मर्मज्ञ होने के कारण उन्होंने एतद् विषयक निम्न ग्रन्थ लिखे–गाय और कुरान—(शीर्षक से ही विषय स्पष्ट है) बकरईद—मुस्लिम मान्यताओं से मौलवीजी ने सिद्ध किया है कि ईद के दिन गाय की कुर्बानी इस्लाम में कोई अनिवार्य विधान नहीं है। इस्लामी त्यौहार और उत्सव—यह मुसलमानों में मान्य त्योहारों व पर्वों की जानकारी देने वाला ग्रन्थ है।

प्रो० महेशप्रसाद का स्वयं का प्रकाशन संस्थान आलिम फ़ाज़िल बुक डिपो इलाहाबाद के मुहतमिशगंज मुहल्ले में था। उनके इन ग्रन्थों ने सम्भवतः दूसरा संस्करण भी नहीं देखा। उन्होंने अपनी ईरान यात्रा को भी ग्रन्थकार प्रकाशित किया था। पं० देवप्रकाश अमृतसरी के अनुसार उन्होंने चौदहवें समुल्लास पर कोई टीका लिखी थी जो शायद अप्रकाशित रही। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि नवीनतम खोजों को समाविष्ट कर महर्षि का सर्वांगीण जीवन-चरित लिखा जाये। उनके जीवन काल में यह सम्भव नहीं हुआ। कालान्तर में १९८३ में स्वामीजी की निर्वाण शताब्दी के अवसर पर जब इन पंक्तियों के लेखक का लिखा ऋषि का विशद जीवन-चरित नवजागरण के पुरोधाः दयानन्द सरस्वती प्रकाशित हुआ तो इस ग्रन्थ को मौलवीजी की इच्छा पूर्ति के रूप में देखा जा सकता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

प्रथम खण्ड

प्रथम अध्याय

जन्म तथा कार्य काल

श्री स्वामी दयानन्दजी सरस्वती का जन्म संवत् १८८१ वि० (सन् १८२४ ई०) में हुआ।[A] इस सम्वत् व सन् के आस-पास के समय में दिल्ली के राजसिंहासन पर मुहम्मद अकबर (द्वितीय) मुगल बादशाह था, किन्तु उसकी शक्ति नाम मात्र थी। अंग्रेजों की शक्ति बढ़ रही थी[1] परन्तु ज्ञात रहे कि राष्ट्रीय दृष्टि से अंग्रेज जितने बढ़ रहे थे उससे कहीं अधिक ईसाई लोग धार्मिक विचार से बढ़ रहे थे। लगभग २५ भारतीय भाषाओं में पूर्ण बाइबिल अथवा उसके किसी खण्ड का अनुवाद हो चुका था। इनमें से कुछ भाषाएँ उन लोगों की थी जिन पर अंग्रेजों का अधिकार राष्ट्रीय दृष्टि से नहीं हुआ था। उदाहरणार्थ, जानना चाहिए—काश्मीरी, पश्तो और राजस्थानी भाषाएँ।

प्राय: यह देखा जाता है कि जो बात संस्कृत शब्दों में हो वह अधिक माननीय अथवा आदरणीय समझी जाती है। अत: सम्भवत: यही कारण होगा कि संस्कृत में पूर्ण बाइबिल सन् १८२२ ई० में ही हो गई। राष्ट्रीय दृष्टि से हिन्दू बहुत अच्छी दशा में न थे और उनकी धार्मिक व सामाजिक अवस्था भी अच्छी न थी। सती की प्रथा जोरों पर थी। गंगा सागर (समुद्र) में अपने जीवित बच्चे को फेंक देना कुछ लोग अपना परम धर्म समझते थे। अस्तु। क्या कहा जाय और क्या न कहा जाय कि उस समय हमारी क्या दशा थी।

काशी जो हिन्दुओं का एक प्रधान धार्मिक स्थान है, वह सन्

---

१. इस समय का अंग्रेजी राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य कहलाता था। उक्त समय लार्ड एम्हर्स्ट गवर्नर जनरल थे।

१७९४ ई० में ही अंग्रेजों के अधिकार में आ गया था। इस स्थान में ईसाइयों की ओर से 'जय नारायण स्कूल' सन् १८१४ ई० में चालू हो गया था। कुछ हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा की ओर झुक पड़े थे, क्योंकि इसके द्वारा जीविका सुगमता के साथ चल सकती थी। कहीं-कहीं यह बात थी कि अनेक हिन्दू अपनी संस्कृत व हिन्दी भाषा को त्याग कर अरबी, फारसी था उर्दू को ही अपनाये हुए थे। मास्टर रामचन्द्रजी[B] एक सुप्रसिद्ध हिन्दू विद्वान् ने सन् १८५२ ई० में ११ जुलाई को ईसाई मत ग्रहण कर लिया था। इसी प्रकार अनेक लिखे-पढ़े स्त्री-पुरुष ईसाई धर्म में प्रविष्ट हो गये थे।

मुसलमानों के हाथ से राज्य बहुत कुछ निकल गया और जो कुछ उनके हाथ में था वह भी अच्छी दशा में न था। धार्मिक जोश कुछ लोगों में बहुत था, किन्तु बहुतों में संशोधन का भाव था। अरबी व फारसी का चलन कमज़ोर पड़ रहा था। उर्दू की दशा उन्नति पर थी। कविता ज़ोरों पर थी। कुरान शरीफ के दो अनुवाद उर्दू में पृथक्-पृथक् हो चुके थे। **वैशाख सम्वत् १९२० वि० (अप्रैल सन् १८६३ ई०) में श्री स्वामीजी ने प्रचार कार्य का प्रारम्भ किया था।** यह वह समय था जब कि सन् १८५७ ई० की अग्नि को शान्त हुये बहुत दिन न बीते थे। अंग्रेजी सरकार चाहती थी कि उस नीति से काम लिया जाय जिससे कि भविष्य में कोई आपत्ति न आये। हिन्दू व मुसलमान अपने-अपने लिये चिन्तित थे। अस्तु। मुसलमानों के विषय में अलग कुछ दिखलाया जायेगा। हाँ, हिन्दुओं के सम्बन्ध में कुछ कह देना अधिक आवश्यक है।

दक्षिण में मरहठे और पंजाब में सिक्ख उभरे थे, किन्तु दोनों का पतन हो गया था। समस्त हिन्दू राज्यों ने अंग्रेजों का लोहा मान लिया था। धार्मिक दृष्टि से भी हिन्दुओं का हाल कुछ कम शोचनीय न था, क्योंकि अनेक पढ़े-लिखे हिन्दू ईसाई या मुसलमान हो गये थे। खान-पान सम्बन्धी तनिक बात भी किसी हिन्दू को हिन्दू-क्षेत्र से निकाल कर ईसाई या मुसलमानों के यहाँ जाने पर मज़बूर करती थी। निदान हिन्दुओं की कुरीतियों से ईसाई लोग विशेष रूप से लाभ उठा रहे थे और उनका काम-काज बहुत ज़ोरों पर था। राजा राममोहन राय[१] ने ब्रह्मसमाज की स्थापना सन् १८२८ ई० में की थी। उसके

१. (जन्म १७७४ ई०—मृत्यु १८३३ ई०)।

तथा प्रार्थना समाज के कारण कुछ धार्मिक जागृति पाश्चात्य ढंग पर केवल पढ़े-लिखे लोगों में थी। परन्तु नाना प्रकार के पाखण्डों का ज़ोर हिन्दुओं में अधिक था। मुसलमान अपने धर्म के लिये बहुत कुछ कर रहे थे। ईसाइयों के लिये कहा ही क्या जावे।

[१]ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में सब से पहले सन् १७७० ई में अकाल पड़ा था। सन् १८५४ ई० तक भारत के किसी न किसी भाग में कुल १२ अकाल और चार महँगी हुई थीं। इन कारणों से ईसाइयों की चाँदी थी, क्योंकि हिन्दुओं की ओर से कोई अनाथालय का प्रबन्ध न था। सन् १८६० ई० के बाद सन् १८८३ ई० के पहले कई अकाल भारत के किसी-न-किसी भाग में पड़े। इनसे भी ईसाइयों ने बहुत लाभ उठाया था। अब और बहुत-सी भारतीय भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद हो गया था।

धार्मिक व सामाजिक दृष्टि से अवस्था यह थी कि वहाबियों की विचारधारा ने यहाँ ज़ोर पकड़ा था। भारतीय मुसलमानों के आचार-विचार में भारतीयों अथवा हिन्दुओं के संसर्ग अथवा किसी कारण या अनेक कारणों से जो दोष आ गये थे उनको दूर करने के निमित्त कुछ लोग बड़े उत्सुक हुये थे। पर यह भी स्पष्ट रहे कि उनके साहस की सीमा यहीं तक नहीं थी, बल्कि भारत के सीमाप्रान्त तक पहुँची थी। क्योंकर ?

सन् १८३० ई० के आस-पास सीमाप्रान्त में सिक्खों का ज़ोर था। अस्तु। सिक्खों के मुकाबिले में युद्ध करने के लिये अनेक भारती वहाबी वहाँ पहुँचे थे। सिक्खों के साथ घोर युद्ध किया था। इसमें सन्देह नहीं कि रण-क्षेत्र में हारे और वहाँ अच्छे-अच्छे वहाबी काम आये थे, किन्तु उन्होंने सिक्खों को भी भारी क्षति पहुँचाई थी।

सन् १८६३ ई० में अंग्रेजों और सीमाप्रान्तीय मुसलमान समुदायों के बीच में युद्ध छिड़ गया था, उस युद्ध में उन वहाबियों का हाथ था जो कि सिक्खों से हारने के बाद वहाँ बस गये थे और मुजाहदीन के नाम से प्रसिद्ध थे, क्योंकि उन्होंने सिक्खों के मुकाबिले में ज़िहाद

१. 'माशियात हिन्द' (उर्दू में) उस्मानिया यूनीवर्सिटी द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ ३२७-३३०। यह पुस्तक म० प्रमथनाथ बनर्जी की अंग्रेजी पुस्तक Indian Economics के आधार पर म० इल्बास वरनी द्वारा अनूदित है।

अर्थात् धर्म युद्ध किया था। ऐसे अवसर पर भारत के भीतर के कुछ मुसलमानों ने सीमाप्रान्तीय मुसलमान वहाबी भाइयों की सहायता की थी। इस सम्बन्ध में कुछ लोगों को कड़ी सज़ाएँ सरकार की ओर से मिली थी। कुछ लोग काले पानी भेजे गये थे।[1]

कौन नहीं जानता कि भारतीय इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी की एक बड़ी भारी चीज़ सन् १८५७ ई० का समय है, जिसके पश्चात् भारत का वह नक्शा बदल गया था जो कि पहले था। सन् १८५७ ई० से बहुत पहले ही राष्ट्रीय दृष्टि से मुसलमानों की अवस्था खराब हो गई थी। दिल्ली, लखनऊ और हैदराबाद, यह तीन मुख्य स्थान ऐसे थे जो इनके पृथक्-पृथक् राज्यों के केन्द्र थे, किन्तु उस समय अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति के सम्मुख इनकी दशा बहुत प्रबल न थी। दिल्ली को लॉर्ड लेक ने सन् १८०३ ई० में ले लिया था। इसके बाद वहाँ का मुगल सम्राट् नाम मात्र सम्राट् रह गया था। उस समय साम्राज्य की नौका भँवर में आ गई थी[2]।

लखनऊ के राज्य का अन्त्येष्टि संस्कार सन् १८५७ ई० के पहले ही हो गया था। हैदराबाद का निपटारा अंग्रेजों के साथ जो कुछ होना था वह पहले ही हो चुका था। इस कारण जब दिली व लखनऊ को आपत्तियों का मुँह देखना पड़ा था हैदराबाद में किसी प्रकार की अशान्ति ही न थी।

अब ग़दर के बाद की बात सुनिये। हैदराबाद में उसी प्रकार का

१. ''काला पानी या तवारीख अजीब'' (उर्दू में) मौलाना मुहम्मद जाफ़र साहब थानेसरी द्वारा लिखित और सूफ़ी प्रिंटिंग व पब्लिशिङ्ग कम्पनी पिण्डी बहाउद्दीन (पंजाब) से प्रकाशित। प्रकाशन का समय ग्रन्थ में नहीं लिखा है।

२. 'मज़ाहिब इस्लाम' (उर्दू में) मौलाना नजमुलग़नी खाँसाहब रामपुरी द्वारा लिखित और नवलकिशोर प्रेस लखनऊ द्वारा सन् १९२४ ई० में प्रकाशित, पृष्ठ ६११ (उर्दू में) इनके सिवा सर सय्यद के जीवन चरित्र 'हयात जावेद' मौलाना अलताफ़ हुसेन हाली साहब द्वारा लिखित व 'असबाब बग़ावत हिन्द' नामी उर्दू पुस्तक श्री सर सय्यद महोदय द्वारा लिखित से भी बहुत कुछ हाल मुसलमानों का जाना जा सकता है।

सीरत सय्यद अहमद शहीद—लेखक सय्यद अबुल हसन साहब नदवी (उर्दू में) सन् १९३९ ई० में लखनऊ से प्रकाशित हुई है।

परिवर्तन हुआ। वहाँ ग़दर की गन्ध न थी। लखनऊ में आग भड़की, किन्तु अन्त में शान्त हो गई। अब रहा दिल्ली का मामला। वहाँ ग़दर का ज़ोर अधिक था, इसी कारण दिल्ली को अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा था।

नदी में दैवयोग से जब कोई नाव डूबती है तो क्या होता है ? आस-पास की वस्तुओं पर भी पानी के उथल-पुथल का बुरा प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार दिल्ली के राज्य की नौका डूबी और भी कुछ मुसलमानों को आपत्तियों का आखेट होना पड़ा था। निदान ग़दर के बाद मुसलमानों की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी। मुसलमानों के बदले अंग्रेजों का साम्राज्य भारत में पक्का हो गया था। अंग्रेजों ने सन् १८५७ ई० की अग्नि का जिम्मेवार बहुत कुछ मुसलमानों को ही समझा था। उन पर कुछ कड़ाइयाँ भी हुईं। सय्यद अहमद खाँ साहब[१] अंग्रेजों को खूब समझते थे। उनका मत था कि मुसलमानों का वास्तविक कल्याण इस बात में है कि वह अंग्रेजी राज्य व अंग्रेजी सभ्यता आदि के साथ सहयोग करें। अस्तु। उन्होंने ऐसे ढंग से काम किया कि अंग्रेज मुसलमानों से प्रसन्न हुये और मुसलमान लोग अंग्रेजों से। और सीमाप्रान्त की (सन् १८६३ ई० की) परिस्थिति से वहाबी मुसलमानों के प्रति सरकार के जो विचार थे वह भी सर सय्यद की ही नीति से पलट गये थे।

श्री स्वामीजी का देहान्त ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० अर्थात् कार्तिक कृष्ण १५ (अमावस्या) सम्वत् १९४० वि० अर्थात् दीपावली (दीपमाला) के दिन हुआ था। उनके प्रचार के समय (सन् १८६३ ई०) से उनकी मृत्यु के समय तक का काल उनका कार्य-काल रहा। इस काल में राजनीतिक, धार्मिक और शिक्षा विषयक समस्यायें निस्सन्देह समस्त भारत में बड़े ज़ोरों पर थी।

मेरा ख्याल है कि राजनीतिक समस्या को देखकर ही श्री स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास को लिखना आवश्यक समझा। काँग्रेस की जबरदस्त रट स्वराज्य है, सन् १८८५ ई० में उसका प्रथम अधिवेशन हुआ था। श्री स्वामीजी के सत्यार्थप्रकाश के आठवें

१. जन्म काल सन् १८१७ ई०—मृत्यु १८९८ ई०

समुल्लास[1] में इससे कहीं पहले ही राज्य सम्बन्धी बातें मिलती हैं। श्री स्वामीजी महाराज ने कितना खेद प्रकट किया है और क्या कहा है ? इसका उल्लेख उनके शब्दों में इस प्रकार जान लेना चाहिये—

"अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहना, किन्तु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दु:ख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। विना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिये जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं उसी का मान्य करना भद्र पुरुषों का काम है।"

इसके सिवा ग्यारहवें समुल्लास के प्रारम्भिक पृष्ठों में श्री स्वामीजी ने यह भी लिखा—"सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्य कुल में ही थे। अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राज भ्रष्ट होकर विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहे हैं।"

सत्यार्थप्रकाश व आर्याभिविनय आदि के सिवा श्री स्वामीजी के पत्रों में भी राजनीति व स्वदेश प्रेम विषयक बातें हैं। यह पत्र अनेक लोगों के नाम हैं। इनके विषय में आगे चलकर कुछ लिखा जाएगा।

सन् १८६३ ई० से पहले ही बम्बई, मद्रास और कलकत्ता की यूनीवर्सिटियाँ स्थापित हो गई थीं। अनेक सरकारी स्कूल और कॉलिज क़ायम हो चुके थे। ईसाइयों की ओर से शिक्षा विषयक जो कार्य हो रहा था वह भी बड़े मारके का था। उस समय ईसाइयों द्वारा संचालित शिक्षालयों में बाइबिल पढ़ाई जाती थी या नहीं, रविवार को धार्मिक

---

१. आठवें समुल्लास का अन्तिम भाग देखना चाहिये।

शिक्षा दी जाती थी या नहीं, मैं इन बातों के विषय में कुछ नहीं जान सका। परन्तु यह बात अवश्य हुई कि ईसाइयों के शिक्षालयों में पढ़ने वाले ईसाइयत के प्रभाव से वंचित न रहे।

हाँ, शिक्षा के विषय में विकट समस्या यह ज़रूर थी कि शिक्षा पाश्चात्य ढंग पर हो अथवा पूर्वीय शैली पर हो। माध्यम अंग्रेजी हो अथवा कोई देशीय भाषा। इस प्रकार की समस्याओं का ही फल था कि सरकार ने १८८१ ई० में एक शिक्षा कमीशन नियुक्त किया था। सन् १८८२ ई० में पंजाब यूनीवर्सिटी के स्थापित होने की नौबत आई थी।

सर सैयद साहब का मत था कि मुसलमानों की उन्नति इस ढंग से हो सकती है कि अपनी धार्मिक विद्याओं के साथ ही साथ पाश्चात्य शिक्षा को भी ग्रहण करें। इसी विचार से उन्होंने सन् १८६४ ई० में 'साइंटिफिक सुसाइटी' (विज्ञान परिषद) नाम की एक संस्था खोली थी। एक अखबार भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त निकाला था। सन् १८६७ ई० में उन्होंने एक वर्नाक्यूलर (अर्थात् उर्दू) यूनीवर्सिटी क़ायम किये जाने का विचार सरकार के सम्मुख रखा था। सन् १८६९ ई० में वह इङ्गलैण्ड गये थे और वहाँ से लौटने के पश्चात् २४ मई सन् १८७५ ई० (अर्थात् महारानी विक्टोरिया की वर्षगाँठ के दिन) को अलीगढ़ में एक पाठशाला खोली थी जिसके भवन की नींव बाद में भारत के गवर्नर जनरल लार्ड लिटन ने ८ जनवरी सन् १८७७ ई० में डाली थी। यही संस्था बाद में शनैः शनैः मुस्लिम यूनीवर्सिटी के रूप में हो गई है।

ग़दर से पहले ईसाइयों तथा सरकार दोनों की ओर से अनेक संस्थाएँ ऐसी खुल गई थीं जिनमें अंग्रेजी की शिक्षा होती थी। हिन्दू की माला तो टूट ही चुकी थी, अर्थात् उन्होंने मुसलमानों के समय में फारसी को अपनाया था अतः वह अंग्रेजी के पठन-पाठन पर टूट पड़े, किन्तु मुसलमानों में अनेक लोगों ने अंग्रेजी पढ़ने को अच्छा और अनेक लोगों ने इस बात को अधर्म के समान समझा था। सन् १८३७ या ३८ ई० में सरकारी दफ्तरों से फारसी बिदा कर दी गई थी। उसके स्थान पर दफ्तरों में उर्दू चल पड़ी थी। निदान उर्दू व अंग्रेजी का ज़ोर हो चला था।

अनेक मुसलमानों ने अंग्रेजी पढ़ना उचित न समझा था। इस कारण वह लोग हिन्दुओं से इस विषय में पीछे थे। सर सैयद महोदय की कोशिश यह थी कि मुसलमान पीछे न रहें। परन्तु उनके समकालीन मौलवी मुहम्मद कासिम[1] साहब व अन्य कुछ लोग तो सर सैयद के विचारों के बड़े विरोधी थे। इसी कारण मौलवी मुहम्मद कासिम साहब ने सन् १८६६ ई० में देवबन्द (जिला सहारनपुर) में एक स्कूल खोला ताकि मुसलमानों की शिक्षा तथा उन्नति के लिये जो कुछ किया जाय वह स्वतन्त्र रूप से हो और पूर्वीय ढंग पर हो।

अब इस अवसर पर यह भी भली-भाँति स्पष्ट रहे कि देवबन्द स्कूल के प्राण मौलाना मुहम्मद कासिम साहब वही थे जिन्होंने श्री स्वामीजी के साथ धार्मिक शास्त्रार्थ किया था। इस स्कूल के कार्य-कर्त्ताओं में अब मतभेद हो गया है किन्तु यह स्कूल अब भी अच्छी दशा में है।

निदान शिक्षा सम्बन्धी जो बातें श्री स्वामीजी के समय में थीं उन पर उन्होंने दृष्टि रखी और उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के दूसरे व तीसरे समुल्लासों में विशेष रूप से इस पर लिखा। वेदाङ्ग प्रकाश की, १६ भागों में पठन-पाठन के लिए, रचना हुई। इसके सिवा उनके पत्रों में भी अनेक बातें शिक्षा विषयक हैं। खेद है जो बातें श्री स्वामीजी ने शिक्षा के विषय में लिखी हैं उन पर बहुत कम ध्यान दिया गया है।

अब अन्त में यह कहना आवश्यक है कि जब लोग पाश्चात्य सभ्यता व शिक्षा आदि की ओर तेजी से बढ़ रहे थे, और उन पर इसी बात का प्रभाव डाला जा रहा था; ऐसे समय में श्री स्वामीजी ने भारतवासियों का ध्यान उनकी प्राचीन सभ्यता की ओर आकर्षित किया था। वेद, जिसके सम्बन्ध में अनोखी कल्पनाएँ चल रही थीं उनका निराकरण कर उसकी महत्ता को बढ़ाया।

सन् १९३९ ई० में जब हैदराबाद राज्य में हिन्दुओं की ओर से नि:शस्त्र प्रतिकार और आर्यसमाजियों की ओर से सत्याग्रह ज़ोरों के साथ चल रहा था; उस समय में कुछ विरोधियों ने मुझसे इस प्रकार की बातें की कि हैदराबाद में हिन्दुओं को कभी कोई कष्ट न था।

---

१. (जन्म १८३२ ई०। मृत्यु १८८० ई०)।

वहाँ आर्यसमाज जब से पहुँचा है और वहाँ समाज ने जब कुछ गड़-बड़ किया है तब कुछ ऐसी बातें हुई हैं जो कि हिन्दुओं के हक़ में ठीक नहीं हैं। इत्यादि

उक्त प्रकार की बातों को सुनकर कम-से-कम मेरा एक उत्तर यह हुआ करता था कि श्री स्वामी दयानन्दजी ने सन् १८६३ ई० से प्रचार का आरम्भ किया था, किन्तु मैं हैदराबाद राज्य द्वारा प्रकाशित सामग्री के आधार पर ही कहता हूँ कि हिन्दुओं के निमित्त दशहरा (विजयदशमी) के लिये (यदि यह त्योहार मुहर्रम के साथ पड़े) यह क़ानून बहुत पहले ही बना था—

For three years consecutively, i.e., in 1269 H., 1270 H., and 1271 H., (1852 A.D., 1853 A.D., and 1854 A.D.,) The Dusserah coincided with Moharrum and there was an apprehension of breach of peace. Government therefore issued orders to the effect that Hindus should perform their roligious ceremonies inside their houses and should not bring out their procession with music or other eclat.[1]

भावार्थ—तीन वर्ष लगातार, अर्थात् १८५२, १८५३ व १८५४ ई० में दशहरा व मुहर्रम एक साथ पड़े। शान्ति भङ्ग होने का भय था इस कारण निज़ाम सरकार की ओर से आज्ञा हुई कि हिन्दू लोग अपना त्योहार घरों के भीतर ही मनावें। बाजा अथवा अन्य ठाठ-बाट के साथ अपना जलूस न निकालें।

जानना चाहिये कि उक्त विषय की बात भविष्य में हिन्दुओं के हक़ में और कड़ी हो गई है। मैंने इस अवसर पर इस बात को इस वजह से लिखा कि लोग सचेत रहें। विपक्षी लोग कभी-कभी आर्यसमाज के माथे नाहक कोई बात मढ़ दिया करते हैं। अतः ध्यान रखना चाहिये कि कोई बात वास्तव में आर्यसमाज के बाद हुई है अथवा पहले।

1. "The Arya Samaj in Hyderabad" Published (1939 A.D.) by order of His Exalted Highness the Nizam's Government. Page 39.

द्वितीय अध्याय

ग्रन्थ

(१) पुस्तक रूप में लिखित सामग्री

श्री स्वामीजी ने लगभग २० वर्षों तक काम किया। इनके कार्यकाल में आने-जाने के वे साधन न थे जो कि आजकल उपलब्ध हैं तथापि वह बहुत से स्थानों में पहुँचे, बहुत से व्याख्यान दिये और बहुत से शास्त्रार्थ किये।

प्रत्येक मनुष्य उनके व्याख्यानों, शास्त्रार्थों अथवा उनकी सेवा में न पहुँच सकता था और यह बात भी स्पष्ट ही है कि प्रत्येक स्थान में वह स्वयं भी न पहुँच सकते थे। ऐसी अवस्था में यह बात अत्यन्त आवश्यक थी कि वह अपने विचारों को पुस्तक रूप में मुद्रित कराते ताकि बहुत से लोगों को लाभ होता। परन्तु कार्यकाल के आरम्भ में विरोधियों से निपटने और जिज्ञासुओं को सन्तोष देने का बोझा उनके सर पर इतना ज्यादा था कि वह लेखबद्ध कार्य शुरू में बहुत ही कम कर सके थे।

उनके विरोधी कुछ कम न थे। उनके समय में पुस्तकालयों की भी बहुत कमी थी तथापि अनेक ग्रन्थों को उन्होंने ख़ोजा और उनके आधार पर अनेक ग्रन्थों को लिखा। यह बात कुछ कम मारके की नहीं। फलतः उनकी बदौलत जो रचनाएँ हुई हैं उनका उल्लेख अगले पृष्ठों में किया जाएगा, परन्तु—

ध्यान रहे

१. सन् १८७३ ई० (संवत् १९३० वि०) तथा इसके पश्चात् श्री स्वामीजी ने हिन्दी की ओर विशेषरूप से ध्यान दिया। इससे पहले वह संस्कृत का ही प्रयोग किया करते थे।[E] अतः उक्त समय से पूर्व तथा सम्वत् १९३१ वि० तक की उनकी सारी कृतियाँ संस्कृत में ही हैं।

२. ग्रन्थ के रचे जाने का समय ग्रन्थ के नाम के नीचे लिख दिया गया है।

३. जिन रचनाओं का उल्लेख अगले पृष्ठों में किया गया है उनमें से—संध्या, पाखण्ड खण्डन और अद्वैतमत खण्डन और अष्टाध्यायी भाष्य—मेरी दृष्टि में नहीं आये। इनकी बाबत मैंने जो कुछ लिखा है अन्य ग्रन्थों के सहारे लिखा है।

४. जिन ग्रन्थों की केवल पृष्ठ संख्या आगे बतलाई है और आकार उसके साथ नहीं बतलाया गया है उनका आकार लगभग ९/१/२×६ इञ्च समझना चाहिये।

सन्ध्या—श्री स्वामीजी ने सम्वत् १९२० वि० (सन् १८६३ ई०) में सब से पहले सन्ध्या की पुस्तक आगरा में लिखी थी। वहीं के एक सज्जन म० रूपलालजी ने डेढ़ सहस्र रुपया व्यय करके इसकी तीस सहस्र प्रतियाँ छपवाई थीं और यह मुफ्त बाँटी गई थीं।

पाखण्ड-खण्डन—सम्वत् १९२३ वि० (सन् १८६६ ई०) में यह छोटी-सी पुस्तक भागवत के खण्डन में संस्कृत में लिखी गई। इसकी कई सहस्र प्रतियाँ आगरा में मुद्रित हुई और आगरा के सिवा हरिद्वार के कुम्भ पर भी बाँटी गईं थीं।

इस छोटी-सी पुस्तक के प्रकाशन की आवश्यकता इस कारण अधिक हुई होगी कि उस समय में भागवत की कथा का ज़ोर बहुत ज्यादा था। उदाहरणार्थ, जानना चाहिये कि महाराजा ग्वालियर ने भी सम्वत् १९२१ वि० में भागवत की कथा का प्रबन्ध बड़ी धूम-धाम के साथ अपनी राजधानी में कराया था।[F]

ऐसा भी पता चलता है कि इस छोटी-सी पुस्तक का नाम कुछ दूसरा था।[G]

अद्वैतमत-खण्डन सम्वत् १९२७ वि०—(सन् १८७० ई०) में श्री स्वामीजी ने इसे काशी में प्रकाशित कराया था। इसने मायावाद के मानने वालों में बड़ी हलचल पैदा कर दी थी यद्यपि यह छोटी-सी ही थी।

वेद विरुद्ध मतखण्डन सम्वत् १९३१ वि०—इसमें वल्लभादि मत की पोल खोली गई है। कई बातें बड़े मारके की हैं। श्री स्वामीजी ने इसे संस्कृत में लिखा था और भाषानुवाद पं० भीमसेन शर्मा ने किया था।

इस ग्रन्थ के अन्त में इसके रचे जाने की बाबत एक संस्कृत पद्य इन शब्दों में मिलता है—

[१]शशिरामाङ्कचन्द्रेब्दे कार्तिकस्यासिते दले।
अमायां भौमवारे च ग्रन्थोऽयम्पूर्त्तिमागतः ॥

भाषार्थ—सम्वत् १९३१ वि० कार्तिक कृष्णा अमावस्या मंगल (अर्थात् ९ नवम्बर सन् १८७४ ई०) को यह ग्रन्थ पूरा हुआ।

कुल ४३ पृष्ठों की पुस्तक है।

शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण संवत् १९३१ वि०—अनेक लोग बम्बई प्रान्त में ऐसे हैं जो श्री सहजानन्दजी को नारायण का अवतार और स्वामी नारायण पन्थ का आचार्य मानते हैं। प्रश्न व उत्तर के रूप में इसी पन्थ का खण्डन है। श्री स्वामीजी द्वारा लिखित मूल संस्कृत सामग्री पृथक् १५ पृष्ठों में है और हिन्दी में गुजराती से जो अनुवाद हुआ है वह लगभग १६ पृष्ठों में है।

मूल संस्कृत ग्रन्थ के अन्त से इसके रचे जाने का समय रविवार एकादशी कृष्ण पक्ष पौष सम्वत् १९३१ वि० अर्थात् ४ जनवरी सन् १८०५ ई० निकलता है।

सत्यार्थप्रकाश सम्वत् १९३२ वि०—यह सब से अधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ हिन्दी में है। सच तो यह है कि जो किसान चाहता है कि उसकी खेती अच्छी हो, वह पहले खेत को ठीक करता है, उसमें से समस्त घास-फूस व ख़राब चीज़ें निकाल बाहर कर देता है। फलतः श्री स्वामीजी चाहते थे कि लोगों पर वैदिक मत की छाप लगे। इसी कारण उन्होंने यह आवश्यक उद्योग किया है। वेद विरुद्ध जो बातें लोगों के हृदयों में घर किये हुये हैं अथवा ज़ोरों के साथ जड़ पकड़ रही हैं उनको पहले दूर किया जाय। उसके बाद लोग वेद मत के अनुगामी हो सकेंगे।

जिस समय की रचना सत्यार्थप्रकाश है उसी समय की खण्डनात्मक रचनाएँ—'प्रतिमा पूजा विचार' और 'स्वामी नारायण

१. इसी प्रकार का केवल एक-एक पद्य 'आर्योद्देश्य रत्न माला', 'भ्रमोच्छेदन' व 'सत्य धर्म विचार' और दो-दो पद्य 'शिक्षापत्री ध्यान्त निवारण' व 'गोकरुणानिधि' के अन्त में भी ग्रन्थ-रचना के विषय में अवश्य मिलते हैं। इनके सिवा 'वेदाङ्ग प्रकाश' के कुछ खण्डों के अन्त में भी उक्त प्रकार के रचना-विषयक पद्य हैं।

मत खण्डन'—हैं। किन्तु यह रचनाएँ काफ़ी न थीं। तेज और अधिक खण्डन की आवश्यकता थी। नहरनी से पहाड़ नहीं कटता। अस्तु, सत्यार्थप्रकाश की रचना परम आवश्यक थी। परन्तु जो लोग इस ग्रन्थ को केवल खण्डन अथवा अधिकांश खण्डन का ग्रन्थ समझते हैं उनको जान लेना चाहिये कि इस ग्रन्थ के चौदह समुल्लासों में से केवल चार समुल्लास खण्डन के हैं और बाकी दस मण्डन वाले ही हैं। यह ग्रन्थ जब प्रथम बार सन् १८७५ ई० में छपा था तो केवल दो ही समुल्लास खण्डन के थे।[1] सन् १८८४ ई० में जो संशोधित संस्करण[1] निकला है उसमें ईसाई और मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाले समुल्लास बढ़ाये गये हैं ताकि लोग इन दोनों धर्मों की असत्य बातों से भी कुछ परिचित हो जाएँ जो कि भारत में ज़ोरों के साथ अपना सिक्का जमा रहे थे।[2]

आर्याभिविनय संवत् १९३२ वि०—इसमें ईश्वर प्रार्थना व स्तुति सम्बन्धी १०८ वेद मन्त्र भाषा की व्याख्या सहित दो प्रकाश (भाग) हैं। यह ७६ पृष्ठों की पुस्तक है। कम-से-कम इसके दोनों प्रकाशों, सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेद भाष्य भूमिका के अन्त में और यजुर्वेद व ऋग्वेद भाष्यों के अनेक स्थलों में श्री स्वामीजी को पूज्य श्री स्वामी विरजानन्दजी का शिष्य बड़े गौरव के साथ लिखा हुआ अवश्य मिलता है।[10]

संस्कारविधि सम्वत् १९३२ वि०—इसमें सोलह संस्कारों का उल्लेख है। यह २५६ पृष्ठों की पुस्तक हिन्दी व संस्कृत में है।[1] इसके अनुसार यदि संस्कार हों तो जाति की दशा बहुत सुधर सकती है।

इसकी भूमिका से स्पष्ट है कि श्री स्वामीजी ने शनिवार ३० कृष्ण कार्तिक सम्वत् १९३२ वि० (अर्थात् ३० अक्तूबर सन् १८७५

---

१. इस संस्करण की भूमिका से स्पष्ट है कि यह संस्करण भाद्र पद शुक्ल सम्वत् १९३९ विक्रमी, अर्थात् सितम्बर सन् १८८२ ई० में तैयार हो गया था। अब इसी संस्करण के अनुसार वाले सत्यार्थप्रकाश प्रचलित हैं और इन्हीं की धूम है। यह ७२० पृष्ठों का है। प्रथम संस्करण ४०० से कुछ अधिक पृष्ठों का था।

२. 'सत्यार्थप्रकाश की व्यापकता' नाम की एक छोटी-सी पुस्तक मेरी लिखी हुई है। इसके द्वारा कुछ और बातें भी पाठक जान सकते हैं।

ई०) को इसे प्रारम्भ किया था। पहले संस्करण का संशोधन करके इसे वर्तमान रूप में लाने का विचार सम्वत् १९४० वि० आषाढ़ बदी १३ रविवार (अर्थात् १ जुलाई सन् १८८३ ई०) को किया था। यह संशोधित संस्करण सम्वत् १९४१ वि० में प्रयाग से प्रकाशित हुआ है।

वेदान्त-ध्वान्त निवारण सम्वत् १९३३ वि०—इस छोटी-सी पुस्तक में नवीन वेदान्तियों की बातों का खण्डन है, अर्थात् जो लोग यह मानते हैं कि जीव ब्रह्म एक है, जगत् मिथ्या है। इत्यादि।

यह पुस्तक पहली बार मुम्बापुरी (बम्बई) में छपी थी। उसमें हिन्दी भाषा बहुत अशुद्ध हो गई थी। दूसरी आवृत्ति में वह सामग्री अशुद्ध हुई जो कि संस्कृत में थी। इसकी तीसरी आवृत्ति सम्वत् १९४५ वि० फाल्गुन शुक्लपक्ष (मार्च सन् १८८९ ई०) वाली मेरी दृष्टि में आई है। यह ७/१-२×४/१-२ इंच के २८ पृष्ठों की है। इसकी अधिकांश सामग्री हिन्दी में है।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सम्वत् १९३३ वि०—इसमें वेदों की महत्ता दिखाई गई है। पाश्चात्य विद्वानों की ओर से वेदों पर जो आक्षेप या कटाक्ष हैं उनका इसमें समाधान है। यह ग्रन्थ हिन्दी व संस्कृत दोनों में ४६२ पृष्ठों में है, किन्तु इसकी संस्कृत बड़ी सरल है और श्री स्वामीजी की अपूर्व विद्वता का परिचय देती है। यह भी ज्ञात रहे कि इस अपूर्व ग्रन्थ के अन्त में भाष्य विषयक कुछ आवश्यक बातें हैं और यह लिखा है—

"यह भूमिका जो वेदों के प्रयोजन, अर्थात् वेद किस लिये और किसने बनाये, उनमें क्या-क्या विषय हैं इत्यादि बातों को अच्छी प्रकार प्राप्त कराने वाली है।"

इस ग्रन्थ का आरम्भ भादों सुदी प्रतिपदा सम्वत् १९३३ वि० (२० अगस्त १८७६ ई०) रविवार को अयोध्या में हुआ था। इसकी छपाई इसी सम्वत् के अन्तिम (सन् १८७७ ई०) के आरम्भ काल में काशी के ई० जे० लाज़रस एण्ड को मेडीकल हाल प्रेस में शुरू हुई थी। पूरा ग्रन्थ काशी में ही छपा था।

आर्योद्देश्य रत्नमाला सम्वत् १९३४ वि०—हमारे कर्तव्य व वैदिक सिद्धान्त सम्बन्धी ईश्वर, धर्म, अधर्म, पाप, पुण्य आदि की परिभाषा हिन्दी में बतलाई गई है। यह केवल १० पृष्ठों की ही

छोटी-सी पुस्तक है, किन्तु बड़े मारके की चीज़ है।

पुस्तक के अन्त में ग्रन्थ-रचना विषयक संस्कृत पद्य में सम्वत् १९३४ वि० श्रावण शुक्ल पक्ष सप्तमी बुधवार लिखा हुआ है। इस तिथि के अनुसार सन् १८७७ ई० को १५ अगस्त ठहरता है।

वेदों का भाष्य—श्री स्वामीजी के हृदय में वेदों के लिए जो स्थान था, उसके बतलाने की आवश्यकता नहीं। ऋग्वेद भाष्य के आरम्भ से पता चलता है कि उन्होंने भौमवार मार्गशीर्ष शुक्ल ६ सम्वत् १९३४ वि० (११ दिसम्बर सन् १८७७ ई०) से इस भाष्य का कार्य आरम्भ हुआ था। इसमें कुल मण्डल १०, सूक्त १०२८ और मन्त्र १०५८९ हैं। इनमें से मण्डल ७ के सूक्त ६१ के मन्त्र २ तक, अर्थात् कुल ५६२९ मन्त्रों का ही भाष्य श्री स्वामीजी महाराज अपने जीवन में कर सके थे।[K]

यजुर्वेद के भाष्य का आरम्भ पौष सुदी १३ सम्वत् १९३४ वि० (१७ जनवरी सन् १८७८ ई०) गुरुवार से हुआ था। इस भाष्य के प्रारम्भ में इस वेद की बाबत यह लिखा है—

"ईश्वर ने ऋग्वेद में गुण और गुणी के विज्ञान के प्रकाश द्वारा सब पदार्थ प्रसिद्ध किये हैं। उन मनुष्यों को पदार्थों से जिस-जिस प्रकार यथायोग्य उपकार लेने के लिए क्रिया करनी चाहिये तथा उस क्रिया के जो-जो अंग व साधन हैं सो-सो यजुर्वेद में प्रकाशित किये हैं, क्योंकि जब तक क्रिया करने का दृढ़ ज्ञान न हों तब तक उस ज्ञान से श्रेष्ठ सुख कभी नहीं हो सकता और विज्ञान होने के ये हेतु हैं कि जो क्रिया प्रकाश अविद्या की निवृत्ति, अधर्म में अप्रवृत्ति तथा धर्म और पुरुषार्थ का संयोग करना है। जो कर्मकाण्ड है सो विज्ञान का निमित्त है जो विज्ञान काण्ड है सो क्रिया से फल देने वाला होता है—कोई जीव ऐसा नहीं है कि जो मन, प्राण, वायु, इन्द्रिय और शरीर के चलाये बिना एक क्षण भर भी रह सके, क्योंकि जीव अल्पज्ञ एक देशवर्ती चेतन है इसलिए जो ईश्वर ने ऋग्वेद के मन्त्रों से सब पदार्थों के गुणगुणी का ज्ञान और यजुर्वेद के मन्त्रों से सब क्रिया करनी प्रसिद्ध की है, क्योंकि (ऋक्) और (यजुः) इन शब्दों का अर्थ भी यही है कि जिससे मनुष्य लोग ईश्वर से लेके पृथ्वी पर्यन्त पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानों का संग सब शिल्प क्रिया सहित विद्याओं की सिद्ध श्रेष्ठ विद्या, श्रेष्ठ गुण वा विद्या का दान

यथायोग्य उक्त विद्या के व्यवहार से सर्वोपकार के अनुकूल द्रव्यादि पदार्थों का खर्च करें इसलिए इसका नाम यजुर्वेद है।''

इस वेद में कुल अध्याय ४० और कुल मन्त्र १९७५ हैं। श्री स्वामीजी के एक पत्र[१] से यह मालूम होता है कि भाद्र सुदी ८ सम्वत् १९३७ वि० (१२ सितम्बर १८८० ई०) रविवार को यजुर्वेद के सातवें अध्याय के मन्त्रों का भाष्य उस समय किया जा रहा था। शनिवार अगहन सुदी १ सम्वत् १९३९ वि० (२६ नवम्बर सन् १८८२ ई०) को यह भाष्य समाप्त हुआ था। उस समय श्री स्वामीजी उदयपुर में थे।

ऋग्वेद के भाष्य करने के पश्चात् यजुर्वेद के मन्त्र भाष्य का आरम्भ किया जाता है—ऐसे शब्द यजुर्वेद भाष्य के आरम्भ में हैं। इनसे कुछ लोगों ने यह समझा है कि श्री स्वामीजी महाराज ने ऋग्वेद भाष्य समाप्त किया, फिर यजुर्वेद में हाथ लगाया था किन्तु उक्त शब्दों से ऐसा भाव निकालना मेरे विचार से ठीक नहीं, क्योंकि ऋग्वेद भाष्य के आरम्भ किये जाने का जो समय है उसके एक मास व एक सप्ताह बाद ही यजुर्वेद भाष्य के आरम्भ किये जाने का पता चलता है। इतने थोड़े काल में ऋग्वेद भाष्य का पूर्ण होना सर्वथा असम्भव प्रतीत होता है, क्योंकि ऋग्वेद जितना बड़ा है उसके बतलाने की आवश्यकता नहीं और श्री स्वामीजी के पास जो कार्य रहता था वह भी कुछ कम न था। फलतः उक्त शब्दों का भाव मेरे विचार से यह है कि ऋग्वेद भाष्य के आरम्भ करने के पश्चात् यजुर्वेद के मन्त्र भाष्य का आरम्भ किया जाता है।

दोनों वेदों में भाष्यों की छपाई एक ही समय में बम्बई में निर्णय सागर नामी प्रेस में सम्वत् १९३५ वि० में आरम्भ हुई थी। एक-एक खण्ड केवल २४ पृष्ठों का छपता था और प्रति मास ग्राहकों के पास पहुँचता था। वार्षिक मूल्य चार पुरुये और प्रत्येक खण्ड का दाम डाक महसूल सहित ।-) ॥ॽ भारत के भीतर भेजने के लिये रक्खा गया था। कुल पृष्ठ २८८ (लगभग ९/१-२×६ इंच के आकार के) प्रत्येक ग्राहक को प्रति वर्ष मिलते थे। अब यदि उस समय की छपाई व काग़ज आदि के भाव पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि मूल्य अधिक न था। वास्तविक बात यह थी कि कुछ लोगों का धन

---

१. 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' भाग ४, पृष्ठ ६।

उपकारार्थ भी इस कार्य में लगता था।[M] इस बात का पता भाष्य के अनेक खण्डों से चलता है जो कि पृथक्-पृथक् निकले थे। इनके सिवा श्री स्वामीजी के पत्रों से भी उक्त बात का पता चलता है।

माघ शुक्ल २ सम्वत् १९३६ वि० (१२ फरवरी सन् १८८० ई०) बृहस्पति को जब वैदिक यन्त्रालय काशी में स्थापित हुआ तो दोनों वेदों के भाष्य उसमें छपने लगे[१] और इसमें सन्देह नहीं कि श्री स्वामीजी ने ऋग् व यजु दोनों के भाष्यों के लिये भरसक यत्न किया तथापि दोनों भाष्यों का प्रकाशन उनके जीवन काल में समाप्त न हो सका था। अस्तु। यजुर्वेद भाष्य की छपाई शनिवार वैशाख सुदी ११ सम्वत् १९४६ वि० (११ मई सन् १८८९ ई०) को पूर्ण हुई थी और ऋग्वेद भाष्य की छपाई आषाढ़ कृष्ण ५ सम्वत् १९५६ वि० (२८ जून सन् १८९९ ई०) बुधवार को समाप्त हुई थी। ऐसी बात दोनों भाष्यों के अन्तिम खण्डों से मालूम होती है। इनमें से ऋग्वेद भाष्य ८५७३ और यजुर्वेद भाष्य ३६०० पृष्ठों का है।

वेद भाष्यों में पहिले मूल मन्त्र है। फिर यह बातें प्रत्येक मन्त्र के सम्बन्ध में हैं—

(१) पद पाठ

(२) पदार्थ भाष्य (संस्कृत में)

(३) अन्वय ,,

(४) भावार्थ ,,

(५) अन्वयानुसार अर्थ (हिन्दी में)

(६) भावार्थ ,,

श्री स्वामीजी द्वारा संस्कृत भाष्य रचा गया था और हिन्दी में जो कुछ हुआ वह उनकी देख-रेख में अन्य व्यक्तियों द्वारा हुआ।[N] परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हिन्दी में वेदों का भाष्य सब से पहले श्री स्वामीजी के ही उद्योग से हुआ है।

वेद भाष्य का नमूना—श्री स्वामीजी का वेद भाष्य कैसा है

---

१. सम्वत् १९३७ वि० में वेद-भाष्यों के अंक काशी से निकले हैं। किन्तु जब यन्त्रालय सन् १८८१ ई० (संवत् १९३८ वि०) में प्रयाग गया तो कुछ अंक वहाँ से निकले और जब यन्त्रालय सन् १८९१ ई० में अजमेर पहुँचा तो बाकी ग्रन्थ वहाँ छपा।

इस बात का परिचय वास्तव में उनके भाष्य से ही मिल सकता है। परन्तु वेद भाष्य को प्रत्येक व्यक्ति मोल ले सके अथवा प्रत्येक जगह सुगमता के साथ देख सके—यह दोनों बातें कठिन हैं। और इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक यन्त्रालय अजमेर से ऋग्वेद के प्रथम ९ मन्त्रों का भाष्य नमूने के रूप में केवल एक आने में मिलता है,[0] किन्तु बहुत ही कम लोग इस बात से परिचित हैं। फलतः ऋग् व यजुर्वेद के एक-एक मन्त्र का नमूना यहाँ दिया जा रहा है—

ऋग्वेद मं० १, अध्याय १ सूक्त १ मं० ७ का ऋषि दयानन्द ने इस प्रकार भाष्य किया है—

तद्ब्रह्म कथमुपास्यं प्राप्तव्यमित्युपदिश्यते॥

उक्त परमेश्वर कैसे उपासना करके प्राप्त होने के योग्य है इसका विधान अगले मन्त्र में किया है।

उप त्वाग्ने दिवेदिवेदोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि॥ ७॥

उप। त्वा। अग्ने। दिवेऽदिवे। दोषाऽवस्तः। धिया। वयम्।
नमः। भरन्तः। आ। इमसि॥ ७॥

पदार्थ—(उप) सामीप्ये (त्वा) त्वां (अग्ने) सर्वोपास्येश्वर (दिवेऽदिवे) विज्ञानस्य प्रकाशाय प्रकाशाय (दोषावस्तः) अहर्निशम्। दोषेति रात्रिनामसु पठितम्। निघं० १।७। रात्रः प्रसंगाद्वस्त इति दिननामात्र ग्राह्यम् (धिया) प्रज्ञया कर्मणा वा (वयं) उपासकाः (नमः) नम्रीभावे (भरन्तः) धारयन्तः (आ) समन्तात् (इमसि) प्राप्नुमः॥७॥

अन्वयः—हे अग्ने वयं धिया दिवेदिवे दोषावस्तस्त्वा त्वां भरन्तो नमस्कुर्वन्तश्चोपैमसि प्राप्नुयः॥

भावार्थः—हे सर्वद्रष्टः सर्वव्यापिन्नुपासनार्ह वयं सर्वकर्मानुष्ठानेषु प्रतिक्षणं त्वां यतो नैव विस्मरामः। तस्मादस्माकमधर्ममनुष्ठातुमिच्छा कदाचिन्नैव भवति। कुतः सर्वज्ञः सर्वसाक्षी भवान्सर्वाण्यस्मत्कार्य्याणि सर्वथा पश्यतीति ज्ञानात्॥७॥

पदार्थान्वयभाषाः—(अग्ने) हे सब के उपासना करने योग्य परमेश्वर हम लोग (दिवेदिवे) अनेक प्रकार के विज्ञान होने के लिए (धिया) अपनी बुद्धि और कर्मों से आपकी (भरन्तः) उपासना को धारण और (दोषावस्तः) रात्रि-दिन में निरन्तर (नमः) नमस्कार आदि करते हुए (उपैमसि) आपके शरण को प्राप्त होते हैं॥७॥

भावार्थ—हे सबको देखने और सब में व्याप्त होने वाले उपासना के योग्य परमेश्वर हम लोग सब कामों के करने में एक क्षण भी आपको नहीं भूलते इसी से हम लोगों को अधर्म करने में कभी इच्छा भी नहीं होती, क्योंकि जो सर्वज्ञ सबका साक्षी परमेश्वर है वह हमारे सब कामों को देखता है इस निश्चय से ॥ ७ ॥

यजुर्वेद प्रथम अध्याय, मन्त्र ५ का भाष्य भी स्वामीजी महाराज ने इस प्रकार किया है—

अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता।
आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

किंच तद्वाचो व्रतमित्युपदिश्यते।

उक्त वाणी का व्रत क्या है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ५ ॥

अग्ने। व्रतपत इति व्रतऽपते। व्रतं। चरिष्यामि। तत्। शकेयं। तत्। मे। राध्यताम्। इदं। अहं। अनृतात्। सत्यं। उप। एमि ॥ ५ ॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सत्योपदेशकेश्वर। (व्रतपते) व्रतानां सत्यभाषणादीनां पतिः पालकस्तत्संबुद्धौ। (व्रतं) सत्यभाषणं सत्यकरणं सत्यमानं च। (चरिष्यामि) अनुष्ठास्यामि। (तत्) व्रतमनुष्ठातुं। (शकेयं) यथा समर्थो भवेयम्। (तत्) तस्यानुष्ठानं पूर्त्तिश्च। (मे) मम। (राध्यतां) संसेध्यतां। (इदं) प्रत्यक्षमाचरितुं सत्यं व्रतं। (अहं) धर्मादिपदार्थचतुष्टयं चिकीर्षुर्मनुष्यः। (अनृतात्) न विद्यते ऋतं यथार्थमाचरणं यस्मिन् तस्मान्मिथ्याभाषणान् मिथ्याकरणान्मिथ्यामानात्पृथग्भूत्वा। (सत्यं) यद्वेदविद्यया प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः सृष्टिक्रमेण विदुषां संगेन सुविचारेणात्मशुद्ध्या वा निर्भ्रमं सर्वहितं तत्त्वनिष्ठं सत्प्रभवं सम्यक् परीक्ष्य निश्चीयते तत्। सत्यं कस्मात् सत्सु तायते सत्प्रभवं भवतीति वा। निरु० ३।१३। (उप) क्रियार्थे। (एमि) ज्ञातुं प्राप्तुमनुष्ठातुं प्राप्नोमि ॥ अयं मन्त्रः। श० १।१।१।१–६। व्याख्यातः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे व्रतपते अग्ने सत्यधर्मोपदेशकेश्वर अहं यदिदमनृतात्पृथग्वर्त्तमानं सत्यं व्रतमाचरिष्यामि तन्मे मम भवता स्वकृपया राध्यतां संसेध्यतां यदुपैमि प्राप्नोमि यच्चानुष्ठातुं शकेयं तदपि सर्वं राध्यतां संसेध्यताम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—ईश्वरेण सर्वमनुष्यैरनुष्ठेयोऽयं धर्म उपदिश्यते। यो न्यायः पक्षपातरहितः सुपरीक्षितः सत्यलक्षणान्वितः सर्वहिताय वर्त्तमान ऐहिकपारमार्थिकसुखहेतुरस्ति स एव सर्वमनुष्यैः सदाचरणीयः। यच्चैतस्माद्विरुद्धो ह्यधर्मः स नैव केनापि कदाचिदनुष्ठेयः। एवं हि सर्वैः प्रतिज्ञा कार्य्या। हे परमेश्वर वयं वेदेषु भवदुपदिष्टमिमं सत्यधर्म-माचरितुमिच्छामः। येयमस्माकमिच्छा सा भवत्कृपया सम्यक् सिध्येत्। यतो वयमर्थकाममोक्षफलानि प्राप्तुं शक्नुयाम। यथा चाधर्मं सर्वथा त्यक्त्वाऽनर्थकुकामबन्धदुःखफलानि पापानि त्यक्तुं त्याजयितं च समर्था भवेम। यथा भवान् द्व सत्यव्रतपालकत्वातपतिर्वर्त्तते तथैव वयमपि भवत्कृपया स्वपुरुषार्थेन यथाशक्ति सत्यव्रतपालका भवेम। एवं सदैव धर्मं चिकीर्षवः सत्क्रियावन्तो भूत्वा सर्वसुखोपगताः सर्वप्राणिनां सुखकारकाश्च भवेमेति सर्वैः सदैवेष्टितव्यम्। शतपथब्राह्मणेऽस्य मन्त्रस्य व्याख्यायामुक्तं मनुष्याणां द्विविधमेवाचरणं सत्यमननृतं च तत्र ये वाङ्मनःशरीरैः सत्यमेवाचरन्ति ते देवाः। ये चैवानृतमाचरन्ति ते मनुष्या अर्थादसुरराक्षसाः सन्तीति वेद्यम्॥ ५॥

पदार्थ—हे (व्रतपते) सत्य भाषण आदि धर्मों के पालन करने और। (अग्ने) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर मैं। (अनृतात्) जो झूँठ से अलग। (सत्यं) वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश करानेहारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया। (व्रतं) सत्य बोलना सत्य मानना और सत्य करना है उसका। (उपैमि) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूँ। (मे) मेरे। (तत्) उस सत्यव्रत को आप। (राध्यतां) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिससे कि। (अहं) मैं उक्त सत्यव्रत के नियम करने को। (शकेयं) समर्थ होऊँ। और मैं (इदं) इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम। (चरिष्यामि) करूँगा॥ ५॥

भावार्थः—परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियम से सेवन करने योग्य धर्म का उपदेश किया है जो कि न्याययुक्त परीक्षा किया हुआ सत्य लक्षणों से प्रसिद्ध और सब का हितकारी तथा इस लोक अर्थात् संसारी और परलोक अर्थात् मोक्षसुख का हेतु है यही सब को आचरण करने योग्य है और उससे विरुद्ध जो कि अधर्म कहाता है

वह किसी को ग्रहण करने योग्य कभी नहीं हो सकता क्योंकि सर्वत्र उसी का त्याग करना है इसी प्रकार हमको भी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हे परमेश्वर! हम लोग वेदों में आपके प्रकाशित किये सत्य धर्म का ही ग्रहण करें तथा हे परमात्मन्! आप हम लोगों पर ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग उक्त सत्य धर्म का पालन करके अर्थ, काम और मोक्षरूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सकें। जैसे सत्यव्रत के पालने से आप व्रतपति हैं वैसे ही हम लोग भी आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्यव्रत के पालने वाले हों तथा धर्म करने की इच्छा से अपने सत्कर्म के द्वारा सब सुखों को प्राप्त होकर सब प्राणियों को सुख पहुँचाने वाले हों, ऐसी इच्छा सब मनुष्यों को करनी चाहिये। शतपथ ब्राह्मण के बीच इस मन्त्र की व्याख्या में कहा है कि मनुष्यों का आचरण दो प्रकार का होता है एक सत्य और दूसरा झूँठ का अर्थात् जो पुरुष वाणी मन और शरीर से सत्य का आचरण करते हैं वे देव कहाते और जो झूँठ का आचरण करने वाले हैं वे असुर, राक्षस आदि नामों के अधिकारी होते हैं॥५॥

(१) वेद भाष्यों में जो संकेत दिये गये हैं उनकी बाबत 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के अन्तिम पृष्ठों में भली-भाँति बतला दिया गया है। अत: भाष्य देखने वाले प्रेमियों को चाहिये कि उक्त ग्रन्थ को पहले पढ़ें और फिर भाष्य को देखें तो विशेष रूप से लाभ होगा।

(२) यदि श्री स्वामीजी को केवल वेद भाष्य का ही कार्य करना होता तो वह चारों वेदों का भाष्य उतने ही दिनों में कर डालते जितने दिनों तक वे जीवित रहे। परन्तु व्याख्यान व शास्त्रार्थ आदि भी एक कारण थे कि वे इस कार्य को पूरा न कर सके थे।

(३) जिस समय उन्होंने वेद भाष्य के कार्य में हाथ लगाया उसके बाद भी कुछ अन्य ग्रन्थों की ओर से वह उदासीन न थे। उनके कर कमलों अथवा उनके संरक्षण में निम्नलिखित ग्रन्थ तैयार हुये थे। अत: उनका नाम व रचना का समय नीचे दिया जाता है—

	नाम	रचना का संवत् वि०
१.	आर्योद्देश्यरत्नमाला	१९३४
२.	पंचमहायज्ञ विधि	१९३५
३.	अष्टाध्यायी भाष्य	१९३५ (में आरम्भ)

४.	वेदाङ्ग प्रकाश (१६ खण्ड)	१९३६-३९
५.	भ्रमोच्छेदन	१९३७
६.	सत्य धर्म विचार	१९३७
७.	गो करुणा निधि	१९३७
८.	सत्यार्थप्रकाश (द्वितीय संस्करण)	१९३९
९.	संस्कार विधि (द्वितीय संस्करण)	१९४०

निदान एक कारण यह ग्रन्थ भी थे कि समस्त वेदों का भाष्य न हो सका था।

(४) वेद भाष्यों के पृथक्-पृथक् खण्डों पर जो सूचनाएँ व विज्ञापनादि छपे हैं उनसे भी कुछ बातों पर प्रकाश पड़ता है। काशी से वैदिक यन्त्रालय का प्रयाग आना, मुन्शी इन्द्रमणिजी का मुकदमा आदि बातें।

भ्रान्ति निवारण सम्वत् १९३४ वि०—श्री स्वामीजी के वेद भाष्य पर कलकत्ता संस्कृत कॉलिज के स्थानापन्न प्रिन्सिपल पं० महेशचन्द्र न्यायरत्नजी की ओर से जो शंकाएँ हुई हैं, उन्हीं का उत्तर इस ४६ पृष्ठों की हिन्दी पुस्तक में है। इसमें यह दिखलाया गया है कि वेदों में अनेक परमेश्वर की पूजा नहीं है। वास्तव में अग्नि आदि नाम ईश्वर के ही हैं। शास्त्र और युक्ति से इसमें यह भली-भाँति सिद्ध किया गया है।

पञ्चमहायज्ञ विधि सम्वत् १९३५ वि०—इसमें पाँच महायज्ञ—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ का विधान संस्कृत मन्त्रों व भाषार्थ सहित ४० पृष्ठों में है।

वेदाङ्गप्रकाश सम्वत् १९३६ वि०-१९३९ वि०—वेद का अर्थ जानने के लिये महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी भी एक मुख्य चीज़ है। इसकी उत्तमता का पता वेदाङ्ग प्रकाश के अधिकांश भागों द्वारा ही चला है और इसी के द्वारा ही उसके पढ़ने की रुचि बढ़ती है। इसके अधिकांश भागों में संस्कृत व हिन्दी दोनों हैं। इस अपूर्व ग्रन्थ की तैयारी में दूसरे पण्डितों का भी बहुत ज्यादा हाथ रहा है और उनकी बदौलत कहीं-कहीं अशुद्धियाँ हो गई हैं।

ज्ञात रहे कि श्री स्वामीजी के विचार से जिस ढंग की शिक्षा होनी चाहिये उसके लिये वेदाङ्ग प्रकाश एक परम आवश्यक ग्रन्थ है

और वैदिक संस्कृत के निमित्त हिन्दी में एक प्रधान साधन है। पूरा ग्रन्थ लगभग १३३६ पृष्ठों का है। इसमें कुल १६ अङ्क है किन्तु 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' और 'व्यवहारभानु' को इससे पृथक् समझ कर कहीं-कहीं इसके अङ्कों की संख्या केवल १४ ही लिखी हुई देखने में आती है।

इसके अन्तर्गत जो ग्रन्थ है उनके नाम क्रमानुसार पृष्ठ संख्या सहित नीचे दिये जा रहे हैं—

नाम	पृष्ठ संख्या
१. वर्णोच्चारण शिक्षा	२४
२. संस्कृतवाक्यप्रबोध	५२
३. व्यवहारभानु	४४
४. सन्धि-विषय	१०४
५. नामिक	६६
६. कारकीय	४६
७. सामासिक	६३
८. स्त्रैणताद्धित	१७८
९. अव्ययार्थ	२८
१०. आख्यातिक	३९२
११. सौवर	२४
१२. पारभाषिक	५६
१३. धातुपाठ	७२
१४. गणपाठ	५६
१५. उणादिकोश	१३८
१६. निघण्टु	६४

श्री स्वामीजी ने इनके पठन-पाठन पर ज़ोर दिया है। इन सभी के रचे जाने और प्रकाशन का समय भिन्न-भिन्न है। इनकी बाबत थोड़ा-बहुत आगे लिखा जाएगा।

वर्णोच्चारण शिक्षा सम्वत् १९३६ वि०—अकारादि वर्णों के स्थान प्रयत्नादि विषय में महर्षि पाणिनि ने जो कुछ कहा है उसी को मूल सहित हिन्दी भाषा में भली-भाँति इसमें लिखा गया है। पठन-पाठन की यह पहली पुस्तक है। इससे वर्णों का उच्चारण यथायोग्य

हो सकता है।

संस्कृतवाक्यप्रबोध सम्वत् १९३६ वि०—संस्कृत लिखने व बोलने के निमित्त संस्कृत में हिन्दी भाषा अनुवाद सहित बड़ी अच्छी पुस्तक उपदेश-युक्त है। इसके ऊपरी पृष्ठ पर यह शब्द हैं—

'पठन-पाठन-व्यवस्थायां द्वितीयं पुस्तकं' यह ग्रन्थ और व्यवहारभानु अब ऐसे ढंग पर छपते हैं कि जिनसे यह नहीं मालूम होता कि यह दोनों वेदाङ्ग प्रकाश के अङ्ग हैं किन्तु दोनों ग्रन्थों के प्रथम संस्करणों से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाती है।

व्यवहारभानु सम्वत् १९३६ वि०—हमारा व्यवहार धर्म-युक्त क्यों कर होना चाहिये। इसका बोध इस पुस्तक (हिन्दी) से बहुत अच्छी तरह होता है। कई दृष्टान्त बड़े मनोरंजक हैं।

इसकी भूमिका में सम्वत् १९३६ वि० फाल्गुन शुक्ला १५ (अर्थात् शुक्रवार २६ मार्च सन् १८८० ई०) अंकित है। यही तिथि इसकी रचना की प्रतीत होती है। इसके ऊपरी पृष्ठों से स्पष्ट है कि यह पठन-पाठन व्यवस्था की तीसरी पुस्तक है। पहले-पहल यह पुस्तक वैदिक यन्त्रालय में संवत् १९३६ वि० (अर्थात् उस समय) में छपी थी जब कि यन्त्रालय काशी में था।

भ्रमोच्छेदन सम्वत् १९३७ वि०—राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने श्री स्वामीजी के विचारों के विषय में कुछ भ्रम फैलाया था।[1] उसी का उत्तर इसमें है। हिन्दी में यह पुस्तक कुल २३ पृष्ठों की है।

इस ग्रन्थ के अन्त में जो संस्कृत पद्य है उससे रचना-काल बृहस्पतिवार ज्येष्ठ द्वितीया कृष्ण पक्ष सम्वत् १९३७ वि० अर्थात् २७ मई सन् १८८० ई० ठहरता है।

संस्कृत व्याकरण में यह बात है कि—

सन्धि विषय सम्वत् १९३७ वि०—

(१) अच् के स्थान में हल्
(२) हल् के स्थानमें अच् और

१. राजा साहब की रचना का नाम 'निवेदन' था। इसी के उत्तर में भ्रमोच्छेदन है किन्तु इसके उत्तर में उनकी ओर से दूसरा निवेदन छपा तो उसका उत्तर अनु-भ्रमोच्छेदन नामी पुस्तक में पण्डित भीमसेनजी शर्मा की ओर से दिया गया है जो कि वैदिक यन्त्रालय से ही प्रकाशित है।

(१) हल् के स्थान में हल्
(२) अच् के स्थान में अच्

भी हो जाया करते हैं। संधि के ज्ञान से ही यह बात समझ में आ सकती है। सन्धि के ही ज्ञान से पदार्थ ज्ञान और वाक्यार्थ ज्ञान प्राप्त हो सकते हैं। फलतः सन्धि विषय व्याकरण का प्रथम भाग है। उसी का बोध इस ग्रन्थ में यथोचित रूप से कराया गया है।

गोकरुणानिधि सम्वत् १९३७ वि०—गाय आदि पशुओं की रक्षा से सब प्राणियों को सुख हो। इसलिए हिन्दी भाषा में यह पुस्तक रची गई। यह २६ पृष्ठों में है। इसमें गाय की उपयोगिता के विषय में अनेक बातें बड़ी उत्तम हैं।

इसके अन्त में जो दो संस्कृत पद्य हैं उनके अनुसार इसका रचना काल गुरुवार फाल्गुन कृष्ण पक्ष दशमी सम्वत् १९३७ वि० (तदनुसार २४ फरवरी सन् १८८१ ई०) है।

श्री स्वामीजी ने समझा कि गोरक्षा का प्रश्न बहुत आवश्यक है, और इसके द्वारा हिन्दुओं में कुछ संगठन हो सकता है, इस कारण उन्होंने केवल पुस्तक ही न लिखी बल्कि इसका अंग्रेजी अनुवाद भी कराने का उद्योग किया था[R] और अंग्रेजी सरकार में मेमोरियल भेजने का भी उद्योग किया था।

नामिक सम्वत् १९३८ वि०—नामिक में सुप् के साथ संज्ञा आदि शब्दों का विधान हुआ करता है इसी कारण से 'नामिक' नाम है। सन्धि विषय के पश्चात् ही इसका पढ़ना उत्तम है। इसीलिए पठन-पाठन के निमित्त यह पाँचवीं पुस्तक नियत की गई है।

कारकीय सम्वत् १९३८ वि०—कारक का अर्थ है—करने वाला, ग्रन्थ में कारक का वर्णन है इस कारण यह नाम रखा गया है। वास्तविक बात यह है कि कारकों से जितना अर्थ जाना जा सकता है उतना अन्य प्रकरणों से नहीं क्योंकि कारक समूह क्रिया, द्रव्य और गुण वाची शब्दों के सम्बन्ध से समस्त वाक्यों के अर्थों का प्रकाशक है।

इस ग्रन्थ द्वारा पठन-पाठन होने से सुगमता के साथ कारक सन्धि का बोध हो जाता है और वेदादि शास्त्रों का वाक्यार्थ बोध होने में कठिनाई नहीं रहती है।

सामासिक सम्वत् १९३८ वि०—अनेक पदों को एक पद में

जोड़ देने को समास कहते हैं। अनेक पद जब मिलकर एक पद हो जाते हैं तब इस विद्या के जाने बिना उस जुड़े हुये बड़े पद का अर्थ नहीं जाना जा सकता। फलतः इस आवश्यक विषय की पूर्ति उत्तम रीति पर इस ग्रन्थ द्वारा होती है।

स्त्रैणताद्धित सम्वत् १९३८ वि०—पढ़ने वालों को स्त्री और तद्धित प्रत्ययों का बोध होना उचित है। इनके जाने बिना अन्य शास्त्रों का पढ़ना भी सुगम नहीं। संस्कृत में जैसा तद्धित प्रत्ययों से अधिक बोध होता है वैसा अन्य से नहीं। इसी कारण इस ग्रन्थ में स्त्री प्रत्यय का प्रकरण थोड़ा-सा और अधिक तद्धित का ही है।

अव्ययार्थ सम्वत् १९३८ वि०—इसमें अकारादि क्रम से अर्थ और उदाहरण सहित अव्यय लिखे गये हैं। अपने ढंग की एक अपूर्व चीज़ है। विषय के समझने में बड़ी सुगमता होती है।

ज्ञात रहे कि जिस शब्द का स्वरूप तीनों लिङ्ग, सातों विभक्तियों और इनके एक वचन, द्विवचन, बहुवचन (अर्थात् सात विभक्तियों के तीन-तीन के हिसाब से इक्कीस वचनों) में एक-सा बना रहे। जैसा उसका स्वरूप प्रथम हो वैसा ही मध्य और अन्त में भी बना रहे उसमें कोई विकार न हो उसको अव्यय कहा जाता है।

सदृशंत्रिषु लिङ्गेषु सर्वेषु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

आख्यातिक सम्वत् १९३८ वि०—जो शब्द समग्र प्रकृति प्रत्ययों के संयोग से भाव, कर्त्ता, कर्म, भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान काल, एक, दो और बहुत से अर्थों के वाचक हैं उनको आख्यात कहते हैं। ग्रन्थ में विशेष रूप से आख्यात शब्दों का ही व्याख्यान है इस कारण आख्यातिक नाम पड़ा है।

व्याकरण में यह एक कठिन विषय है किन्तु इसके द्वारा वैदिक और लौकिक सब सूत्र सुगम हो गये हैं और इसमें जो सूची लगाई गई है इससे इस ग्रन्थ की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है।

सौवर सम्वत् १९३९ वि०—वेदों में उदात्तादि स्वर ऊपर नीचे लगे रहते हैं। जब तक मनुष्य उनको ठीक-ठीक न जाने तब तक लौकिक-वैदिक वाक्यों व छन्दों का स्पष्ट, प्रिय उच्चारण, गान और ठीक-ठीक अर्थ भी नहीं ज़ान सकता अर्थात् उनसे उचित लाभ नहीं उठा सकता। उन्हीं स्वरों की व्यवस्था का उत्तम बोध इस ग्रन्थ से हो

सकती है।

पारिभाषिक सम्वत् १९३९ वि०—सब ओर से लौकिक-वैदिक और शास्त्रीय व्यवहार के साथ जिसका सम्बन्ध रहे अर्थात् उक्त तीनों प्रकार का व्यवहार जिससे सिद्ध हो उसको परिभाषा कहते हैं। यह परिभाषाओं का व्याख्यान रूप ग्रन्थ है इस कारण इसका नाम पारिभाषिक रक्खा गया है। परिभाषाओं में से जो अष्टाध्यायी के परिभाषा सूत्र हैं वह सन्धि विषय में व्याख्यापूर्वक लिखे गये हैं। इसमें केवल उन परिभाषाओं को लिखा गया है जो पतञ्जलि के महाभाष्य में हैं। ज्ञात रहे कि परिभाषाओं का मुख्य तात्पर्य दोषों का निवारण करके व्यवस्था कर देना होता है। अस्तु। व्याकरण के सन्धि आदि प्रकरणों में जो-जो सन्देह पड़ते हैं वह इन परिभाषाओं के पठन-पाठन से निवृत्त हो जाते हैं।

धातुपाठ सम्वत् १९३९ वि०—यह ग्रन्थ यथार्थ व्याख्यान और भूमिका सहित आख्यातिक में छप चुका है। परन्तु उसमें धातु अर्थों के सहित व्याख्यान के बीच-बीच में पड़े हैं इस कारण उस ग्रन्थ में मूल का पाठ करना तथा याद करना कठिन पड़ता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये यह मूल पुस्तक पृथक् छपवाई गई है।

हाँ, इस पुस्तक से यह भी जाना जा सकता है कि कौन-कौन धातु किस-किस गुण में किस-किस अर्थ में सेट व अनिट हैं।

गणपाठ सम्वत् १९३९ वि०—इस पुस्तक का नाम गणपाठ इस कारण है कि इसमें एकत्र मिला के बहुत-बहुत शब्दों का समुदाय पठित है।

अष्टाध्यायी में सर्वादि से लेकर जितने गण जिन-जिन सूत्रों पर हैं उन सूत्रों सहित सब इसमें लिखे गये हैं। इन गणों की सूची भी दी गई है। आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं टिप्पणियाँ दी गई हैं ताकि सुगमता हो। परन्तु केवल धातुपाठ और उणादि दो गण पृथक्-पृथक् लिखे गये हैं।

उष्णादि कोष सम्वत् १९३९ वि०—इसमें उणादि सूत्रों की वृत्तियाँ सुगम संस्कृत में हैं। कठिन सूत्र का अर्थ और शब्दों के पर्याय व विशेषवाचक शब्द भी दिये गये हैं।

जो लोग पठन-पाठन-व्यवस्था की वह पुस्तकें पढ़ चुके हैं जो

इससे पहले की हैं उनके लिये इसकी संस्कत का समझना कोई कठिन काम नहीं है।

निघण्टु सम्वत् १९३९ वि०—यह अपूर्व कोष (केवल शब्दों का संग्रह) विशेष कर वेद से (और सामान्यतः लौकिक ग्रन्थों से भी) सम्बन्ध रखता है। यह और इसका भाष्य निरुक्त दोनों यास्क मुनि के बनाये हुये हैं।

यह ग्रन्थ विशेष उद्योग के साथ प्रकाशित कराया गया है। जो पाठान्तर अनेक प्रतियों में हैं उनको नीचे दिखला दिया गया है और अकारादि क्रम से इसकी शब्दानुक्रमणिका भी इसके अन्त में लगाई गई है जिससे कोई भी शब्द सुगमता के साथ ढूँढ़ा जा सकता है। इसके शब्दों में स्वर भी लगाये गये हैं। वेद का वास्तविक अर्थ जानने में इस ग्रन्थ से विशेष रूप से सहायता मिलती है। इसी कारण इसको विशेष परिश्रम के पश्चात् छपवाया गया है।

अब कुछ शब्द प्रचलित व निघण्टु अनुसार अर्थ सहित नीचे दिये जाते हैं जिनसे प्रत्यक्ष है कि किसी शब्द का अर्थ कितना बदल गया है—

शब्द	**अर्थ**	
	प्रचलित	निघण्टु अनुसार
विप्र	ब्राह्मण	बुद्धिमान्
अहि	सर्प	मेघ
अश्मा	पाषाण	मेघ
गौरी	महादेव की स्त्री	वाणी
स्वाहा	अग्नि की स्त्री	वाणी

इससे अनुमान किया जा सकता है कि निघण्टु की महत्ता कितनी है।

स्वमंतव्यामंतव्य प्रकाश सम्वत् १९३९ वि०—श्री स्वामीजी के मन्तव्य संक्षेप के साथ सत्यार्थप्रकाश (दूसरे संस्करण) के अन्त में सन् १८८४ ई० में सब से पहले प्रकाशित हुये हैं। परन्तु ज्ञात रहे कि यह मन्तव्य बाद को पृथक् भी कई बार अच्छी संख्या में प्रकाशित हुये हैं। इसके आरम्भ में श्री स्वामीजी ने कहा है—

"मैं अपना मन्तव्य उसी को मानता हूँ कि जो तीन काल में

सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना का मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसका छोड़ना-छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।''

इसके सिवा—ईश्वर, सृष्टि, राजा, प्रजा, शिक्षा, तीर्थ आदि ५१ बातों की परिभाषा उत्तम रीति पर बताई गई है। यह स्वमन्तव्यामन्तव्य कुल ८ पृष्ठों का है परन्तु बड़े मारके का है।

अष्टाध्यायी का भाष्य सम्वत् १९३५ वि० (में आरम्भ)—यह ग्रन्थ श्री स्वामीजी के जीवन काल में मुद्रित नहीं हुआ।[S] इसकी हस्तलिखित प्रति कुछ खण्डित हो गई थी किन्तु उसे ठीक कराया गया है। हिन्दी में यह प्रथम, नवीन और बहुत उपयोगी पुस्तक वेद को समझने के लिये है।

सन् १९४० ई० तक केवल दो भाग ही प्रकाशित हो सके हैं।[T]

नियम और उप-नियम—नियम और उप-नियम जो आर्यसमाजों के निमित्त श्री स्वामीजी ने बनाये हैं वह भी पुस्तक के रूप में १२ पृष्ठों (आकार ७/१-२×४/१-२ इंच) में ठहरते हैं। यह भी बहुत भारी संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं।[U] इनसे उद्देश्यों तथा संगठन सम्बन्धी नियमों पर बड़ा प्रकाश पड़ता है।

उपनियमों में कुछ संशोधन श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली की ओर से शनिवार २६ जनवरी सन् १९३४ ई० (माघ बदी ६ सम्वत् १९९१ वि०) को हुआ है और ऐसी प्रति सभा की ओर से पृथक् छपवाई गई है। नियम व उपनियमों की नींव वास्तव में पहले बम्बई में सम्वत् १९३२ वि० (सन् १८७५ ई०) में पड़ी थी और लाहौर में प्रथम संशोधन सन् १८७७ ई० अर्थात् सम्वत् १९३४ वि० में हुआ था।

स्वीकार पत्र—फाल्गुन कृष्ण ५ मंगलवार अर्थात् २७ फरवरी सन् १८८३ ई० को उदयपुर में श्री स्वामीजी ने एक वसीअतनामा (स्वीकार पत्र) अपनी सारी सम्पत्ति के निमित्त लिखा था। इसके अनुसार २३ व्यक्तियों को इसका सदस्य नियुक्त किया था। यह स्वीकार पत्र पुस्तक रूप में कई बार छप चुका है और 'दयानन्द ग्रन्थ माला—शताब्दी संस्करण' के दूसरे भाग के अन्त में भी छपा हुआ है। यह केवल ६ पृष्ठों का ही है किन्तु इससे उनके विचारों पर कुछ

न कुछ प्रकाश पड़ता है।

(२) पुस्तक रूप में शास्त्रार्थ

श्री स्वामीजी महाराज ने अपने जीवन काल में अनेक शास्त्रार्थ किये थे। उनमें से जो पुस्तक रूप में प्रकाशित हुये हैं उन्हीं का उल्लेख आगे किया जा रहा है—

काशी शास्त्रार्थ सम्वत् १९२६ वि०—मंगलवार कार्तिक सुदी १२ सम्वत् १९२६ वि० अर्थात् १६ नवम्बर सन् १८६९ ई० को काशी में श्री स्वामीजी का शास्त्रार्थ पाषाणमूर्ति पूजा के विषय पर हुआ था। उसी का उल्लेख संस्कृत व भाषा दोनों में कुल १६ पृष्ठों में है।

प्रतिमा पूजन विचार[1] सम्वत् १९३० वि०—हुगली (कलकत्ता के पास) में पण्डित ताराचरण तर्करत्नजी के साथ चैत सुदी एकादशी सम्वत् १९३० वि० (६ अप्रैल सन् १८७३ ई०) को श्री स्वामीजी का शास्त्रार्थ–प्रतिमा पूजन के विषय पर हुआ था। उसी का वर्णन इस छोटी–सी पुस्तक में मिलता है किन्तु अन्य अनेक उपयोगी बातें भी हैं। यह पुस्तक सब से पहले बनारस के 'लाइट प्रेस' में सम्वत् १९३० वि० सन् १८७३ ई० में छपी है। ८×५ इंच के आकार में केवल २७ पृष्ठों की है।

सत्य धर्म विचार[2] सम्वत् १९३७ वि०—मार्च सन् १८७७ ई० में चाँदापुर जिला शाहजहाँपुर के मेले में ईसाई व मुसलमान विद्वानों से सत्य धर्म की बाबत विचार हुआ था। वही चीज़ हिन्दी के ३० पृष्ठों में है।

इसके अन्त में जो संस्कृत पद्य है उससे इसके लिखे जाने का समय मंगलवार १२ श्रावण शुक्ल पक्ष सम्वत् १९३७ वि० अर्थात् १७ अगस्त सन् १९८० ई० है।

सत्यासत्यविवेक—बरेली के राजकीय पुस्तकालय में श्री स्वामीजी व पादरी टी०जे० स्कॉट साहब का शास्त्रार्थ तीन दिन हुआ

१. यह शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ था किन्तु इसको हिन्दी में बाबू हरिश्चन्द्रजी ने पहिले पहल छपाया था।

२. यह शास्त्रार्थ मुसलमानों की ओर से 'मुबाहसा शाहजहाँपुर' के नाम से उर्दू में छपा है इसकी एक प्रति 'मुज्तबाई प्रेस' दिल्ली की छपी हुई (सन् १९१४ ई० की) मैंने देखी है।

था।

पहला दिन—अनेक जन्म के विषय में।

दूसरा दिन—अवतार अर्थात् ईश्वर का शरीर करना।

तीसरा दिन—ईश्वर का पाप क्षमा करना।

इन विषयों के शास्त्रार्थ की बातें हिन्दी में विस्तारपूर्वक उक्त ग्रन्थ में छपीं। यह शास्त्रार्थ २५, २६ व २७ अगस्त सन् १८७९ ई० अर्थात् भादों सुदी ८, ९ व १० सम्वत् १९३६ वि० को हुआ था।

चेतावनी

जो लोग इस भ्रम में हैं कि श्री स्वामीजी ने जो कुछ लिखा है वह सबका सब अथवा अधिकांश खण्डन पूर्ण है, उनको जतला देना या जान लेना चाहिये कि श्री स्वामीजी द्वारा लिखी हुई सामग्री वस्तुतः खण्डन से कहीं अधिक मण्डन पूर्ण है जैसा कि उनके समस्त ग्रन्थों पर विचार करने से भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है।

श्री स्वामीजी के समस्त ग्रन्थों की बाबत यदि मोटा-सा भी हिसाब किया जाय तो उनकी लिखी हुई सारी सामग्री बड़े आकार (अर्थात् लगभग ९/१-२×६ इंच) लगभग १९०० पृष्ठों में वैदिकयन्त्रालय अजमेर में 'दयानन्द ग्रन्थमाला—शताब्दी संस्करण' के नाम से छपा है। उसमें दिखलाया गया है कि उक्त ग्रन्थों में से प्रत्येक सन् १९२४ ई० तक कब-कब कितना छपा है।[१] इस ग्रन्थ माला के दूसरे भाग में 'स्वीकारपत्र' की प्रति भी सम्मिलित है किन्तु वह उक्त १४ ग्रन्थों से अधिक चीज़ है।

श्री स्वामीजी द्वारा लिखा हुआ बहुतेरा कार्य अधिक से अधिक दस वर्ष के भीतर का ही ठहरता है क्योंकि सन् १८७४ ई० से पहले की चीज़ें बहुत ही कम हैं। क्या ही अच्छा हो यदि इस विषय पर और अधिक खोज के साथ थोड़ा-बहुत प्रकाश डाला जाय और यथा

---

१. वेद विरुद्धमतखण्डन पहली बार जिस सन् में छपा वह संख्या अंकित नहीं और 'शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण' के प्रथम संस्करण का समय शताब्दी संस्करण में सन् १९०१ ई० लिखा हुआ है। उसके सम्बन्ध में मुझे यह कह देना है कि यह ग्रन्थ भाषा अनुवाद सहित पहले पहिले उस सन् में छपा। वास्तव में मूल ग्रन्थ सन् १८७५ ई० में छपा है। इसका गुजराती अनुवाद मार्च सन् १८७५ ई० में ही हो गया था।

सम्भव यह भी दिखाया जाय कि अमुक कारण से इसकी रचना आवश्यक समझी गई। उदाहरणार्थ, जानना चाहिये कि श्री स्वामीजी अक्टूबर सन् १८७४ ई० में बम्बई प्रान्त में प्रचारार्थ गये। उधर वल्लभाचार्य मत का ज़ोर था। इस कारण 'वेद विरुद्ध मत खण्डन' के लिखे जाने की नौबत आई थी। यही पुस्तक काफी न थी इसी कारण इसके बाद ही 'शिक्षापत्री ध्वान्त निवारण' लिखा था।

श्री स्वामीजी द्वारा जो सुधार हुआ है, जो जागृति हुई है यदि उसको एक ओर रखकर हम उनकी हिन्दी की सामग्री पर ध्यान दें तो केवल इस कार्य के विचार से उनका सारा काम कुछ कम महान् नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि उनके अनेक ग्रन्थों में संस्कृत की अच्छी खासी मात्रा है तथापि हिन्दी की सामग्री संस्कृत से अवश्यमेव अधिक है। निदान हिन्दी में उनका जितना लेख है और उनकी लिखी हुई सामग्री का जितना प्रकाशन व प्रचार हुआ है उससे भली-भाँति स्पष्ट है कि उनके द्वारा हिन्दी का कितना बड़ा काम हुआ है।

मूल्य की दृष्टि से प्रत्येक ग्रन्थ सस्ता है क्योंकि ९/१-२×७ इंच आकार के ४०० पृष्ठों का अथवा ७/१-२×५ इंच वाला लगभग ८०० पृष्ठों वाला सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में साधारणत: अधिक से अधिक छह आने में मिल जाता है।[W]

श्री स्वामीजी के ग्रन्थ प्राय: वैदिक यन्त्रालय अजमेर से छपे हैं। यह यन्त्रालय सन् १८८० ई० में काशी में स्थापित हुआ था। बाद में प्रयाग और फिर अजमेर पहुँचा है। उक्त सन् से पहले जो ग्रन्थ छपे हैं वह कई दूसरे प्रेसों में भी छपे हैं। दयानन्द ग्रन्थमाला—शताब्दी संस्करण से भी इस बात का कुछ पता लग जाता है क्योंकि उसमें सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि व कुछ अन्य ग्रन्थों के पहले पहिल छापे जाने का समय सन् १८८० ई० (वैदिक यन्त्रालय की स्थापना) से पूर्व का दिखलाया गया है। इसके सिवा उक्त विषय पर उन पत्रों द्वारा भी बहुत कुछ जाना जा सकता है जो कि श्री स्वामीजी की ओर से अनेक लोगों के नाम हैं और जो कि अनेक लोगों की ओर से श्री स्वामीजी महाराज के नाम हैं। ऐसे पत्रों के विषय में आगे चलकर कुछ लिखा जाएगा। किन्तु यह भी ज्ञात रहे कि पत्रों के सिवा जो विज्ञापन श्री स्वामीजी महाराज की ओर से

हैं, उनसे भी ग्रन्थों की बाबत बहुत कुछ मालूम हो सकता है।

श्री स्वामीजी के कई ग्रन्थ—सत्यार्थप्रकाश, आर्याभिविनय, व्यवहारभानु व आर्योद्देश्यरत्नमाला—मेरी दृष्टि में अवश्य ऐसे आये हैं जो सन् १९२० ई० के बाद वैदिक यन्त्रालय के सिवा अन्य स्थानों से प्रकाशित हैं। संस्कारविधि पर दो टीकायें 'संस्कार चन्द्रिका' व 'संस्कार प्रकाश' और 'सत्यार्थप्रकाश' के आदि के दो समुल्लासों के भाष्य भी मेरी दृष्टि में आये हैं।[X] मेरे विचार से श्री स्वामीजी के ग्रन्थों की बाबत आवश्यकता है कि उनके सम्बन्ध में यह बातें लिखी जायें—

(१) प्रत्येक (मूल) ग्रन्थ कब, कितना, किस आकार में और कहाँ छपा है। किस के द्वारा प्रकाशित हुआ है।

(२) टीका, टिप्पणी या किसी अन्य विशेषता के साथ वह ग्रन्थ छपा है तो उसका भी उल्लेख यथोचित रूप से किया जाय।

(३) किसी ग्रन्थ का अनुवाद किसी ने किस भाषा में कब किया। वह अनुवाद कब, कितना और कहाँ छपा। किस के द्वारा प्रकाशित हुआ। यदि अनुवाद अनेक हुये हैं तो प्रत्येक का उल्लेख यथोचित रूप से किया जाय। और यदि अनुवाद के संस्करण कई हुये हैं तो यथा सम्भव प्रत्येक संस्करण का समय, प्रकाशक, प्रेस, संख्या और आकार आदि का उल्लेख होना उत्तम है। इन बातों के सिवा यदि कोई और बात उसके विषय की हो तो उसे भी अवश्य दिखलाना चाहिये।[Y]

इसमें सन्देह नहीं कि जो कुछ लिखने तथा एकत्र कर देने के लिये मैंने ऊपर कहा वह एक कठिन काम है किन्तु उसकी उपयोगिता तथा महत्ता से कोई विचारशील पुरुष इनकार नहीं कर सकता।

तृतीय अध्याय

पत्र-व्यवहार

पत्रों में अनोखा जादू हुआ करता है। यही मूल कारण है कि यदि किसी व्यक्ति के हाथ दूसरे का पत्र लगता है तो एक ही आध ऐसा होता है जो दूसरे का पत्र न पढ़ता हो। दूसरी बात यह कि मनुष्य के आचार-विचार आदि पर जो प्रकाश उसके लिखे हुये पत्रों से पड़ता है वह उसके लेख या व्याख्यान आदि से कभी-कभी नहीं पड़ा करता है।

श्री स्वामीजी के पहले तथा उनके समय में भी जो हिन्दी सेवी हुये हैं उनमें से किसी के भी पत्र ऐसे प्रतीत नहीं होते जो कि पुस्तक रूप में पृथक् प्रकाशित हुये हों। वास्तव में श्री स्वामीजी के ही पत्र पहले-पहल पृथक् पुस्तक रूप में प्रकाशित हुये प्रतीत होते हैं।

'दयानन्द लेखावली' के नाम से सन् **१९०३ ई०** में एक छोटी-सी पुस्तक **'पंजाब प्रिंटिङ्ग वर्क्स लाहौर'** में छपी थी। इसमें सात संस्कृत पत्र हिन्दी भाषा अनुवाद सहित हैं। इनमें से दो पत्र श्री स्वामीजी की ओर से थियोसोफिकल सोसाइटी के सभासदों के नाम व दो पत्र श्रीमती रमा के नाम हैं और तीन पत्र श्रीमती रमा के श्री स्वामीजी के नाम हैं। कोई अन्य पुस्तक इससे पहले की छपी हुई अभी तक मेरी दृष्टि में नहीं आई और न मुझे किसी अन्य प्रकार से मालूम हुई है जिसमें श्री स्वामीजी के केवल पत्र ही पुस्तक रूप में प्रकाशित हुये हों।

श्री रामविलास सारडा द्वारा 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन' नामी एक जीवन-चरित श्री स्वामीजी महाराज का पहली बार सम्वत् १९६१ वि० (सन् १९०४ ई०) में प्रकाशित हुआ है। इसमें अनेक पत्र परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित हैं। इनमें से कुछ श्री स्वामीजी की ओर से हैं और कुछ श्री स्वामीजी के नाम हैं। परन्तु यह भी ज्ञात रहे कि एक दिन उक्त जीवन-चरित्र के **चौथे संस्करण** की एक प्रति मेरी

दृष्टि में आई और उसमें वह पत्र न मिले जो कि प्रथम संस्करण में प्रकाशित हुये हैं। फलतः प्रथम के सिवा दूसरे व तीसरे संस्करणों ही में निकले हैं—इस बात की बाबत दूसरे व तीसरे संस्करणों से पता लगा है।

अब यह भी ज्ञात हो कि पत्र-व्यवहार विषयक उद्योग स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा भी उसी समय में हुआ था जब कि वह लाला मुंशीराम जिज्ञासु थे। इनका ग्रन्थ—**'ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार' के नाम से सन् १९१० ई० में प्रकाशित हुआ है।** इसमें केवल आठ पत्र ऐसे हैं जो कि श्री स्वामीजी के हैं। बाक़ी लगभग २०० पत्र ऐसे हैं जो भिन्न-भिन्न लोगों की ओर से श्री स्वामीजी की सेवा में पहुँचे हैं। इसके पश्चात् पं० श्री भगवद्दत्तजी बी० ए० का उद्योग है कि **'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन'** के नाम से श्री स्वामीजी के लगभग २३० पत्र व अनेक विज्ञापन आदि चार भागों में छपे जिनमें से प्रथम भाग **सन् १९१८**, द्वितीय भाग **सन् १९१९ ई०,** तृतीय भाग **जनवरी सन् १९२७ ई०** और चतुर्थ भाग **जुलाई सन् १९२७ ई० में प्रकाशित हुआ।** इन भागों में सब पत्र ऐसे हैं जिनको श्री स्वामीजी ने भिन्न-भिन्न लोगों के पास भेजा था। हाँ, यह भी ज्ञात रहे कि श्री स्वामीजी के आठ पत्र जो स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा सम्पादित ग्रन्थ में हैं वह सब उक्त चारों भागों में आ गये हैं।

'ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार' इस नाम से एक पुस्तक गुरुकुल-काँगड़ी ज़िला सहारनपुर अब हरिद्वार से स्वर्गीय श्री चमूपतिजी के उद्योग से सम्वत् १९९२ वि० में प्रकाशित हुई है। इसमें श्री स्वामीजी के अन्तिम काल के ही पत्र हैं और जितने पत्र श्री स्वामीजी के हैं उनसे कहीं अधिक पत्र वह हैं जो कि श्री स्वामीजी की सेवा में भेजे गये हैं।

श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा सम्पादित पत्रों से अनेक बातों का पता चलता है अतः उदाहरणार्थ जानना चाहिये—

१. उस काल में कितनी जबरदस्त श्रद्धा अनेक लोगों में धर्म के लिये थी।

२. कुछ स्थानों में परस्पर विरोध भी पैदा हो गया।

३. वेदाङ्ग प्रकाश के अङ्गों को पं० भीमसेन व पं० ज्वालादत्त ने

ही बहुत कुछ बनाया था। इसकी अशुद्धियों के ज़िम्मेवार श्री स्वामीजी को ठहराना ठीक नहीं।

४. कुछ अन्य पुस्तकों में जो अशुद्धियाँ हुई हैं वह वास्तव में अन्य लोगों के कारणों से हुई हैं।

५. श्री स्वामीजी गोरक्षा के विषय में बहुत कुछ करना चाहते थे।

६. जिस समय के पत्र हैं उस समय की ऐसी हिन्दी का पता चलता है जो कि साधारण व्यक्तियों द्वारा लिखी जाती थी क्योंकि संग्रह में अनेक पत्र ऐसे हैं जो कि साधारण व्यक्तियों द्वारा लिखे गये हैं।

पं० श्री भगवद्दत्तजी द्वारा सम्पादित चारों भागों के पत्रों से श्री स्वामीजी महाराज के आचार, विचार तथा जीवन सम्बन्धी बातों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। यह सब पत्र अधिकांश श्री स्वामीजी के जीवन के अन्तिम भाग के हैं। समस्त पत्र **हिन्दी, संस्कृत, उर्दू व अंग्रेजी में हैं।** श्री स्वामीजी उर्दू व अंग्रेजी नहीं जानते थे। अत: ऐसे पत्रों को उन्होंने अवश्य किसी से लिखवाया था। परन्तु हिन्दी के अवश्य और सम्भव है कि संस्कृत के कुछ पत्रों को भी उन्होंने किसी और से लिखवाया हो।[१] अनेक पत्रों में समय अंकित है किन्तु अनेक का समय किसी दूसरे पत्र के सहारे जाना जा सकता है। अनेक पत्रों में उस स्थान का भी नाम लिखा हुआ है जहाँ से वह पत्र भेजा गया था। फलत: यह कि श्री स्वामीजी की ओर से जो पत्र हैं और वह पत्र भी जो कि श्री स्वामीजी की सेवा में भेजे गये हैं अर्थात् सब के सब बड़े काम के हैं केवल उन लोगों के लिये जो कि इनसे वास्तव में लाभ उठाना चाहें।

जयपुर में समाज स्थापित हुआ। पण्डितों ने श्री स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने की चेष्टा की। श्री स्वामीजी को पत्र द्वारा यह बात मालूम हुई तो उन्होंने जयपुर के पत्र-प्रेषक बाबू नन्दकिशोरजी[AA] को मिती ज्येष्ठ शुक्ल १४ बुध सम्वत् १९३९ वि० के पत्र में यह लिखा—

"देखो बड़े शोक की बात है कि जयपुर में अनेक गिरजाघर

१. हिन्दी व संस्कृत के अनेक पत्र आद्योपान्त उनके ही हाथ के लिखे हुये हैं।

बन गये और पादरी लोग राम, कृष्णादि भद्र पुरुषों की निन्दा करते हैं और सैकड़हों (सैकड़ों) को बहकाकर भ्रष्ट कर रहे हैं। उनके हटाने को पण्डित व राजा आदि राजपुरुषों ने कुछ भी प्रयत्न न किया। और जो आप लोगों ने सत्य वेद धर्म की उन्नति होने के वास्ते समाज स्थापित किया हैं उसकी उन्नति होने में पण्डित आदि विघ्नकर्त्ता होते हैं। इतने ही से तुम समझ लो कि ये क्या शास्त्रार्थ करेंगे सिवाय परोक्ष में गाल बजाने के।''[१]

रजवाड़ों के विषय में एक को श्री स्वामीजी ने यह लिखा है—

''आप जानते हैं कि रजवाड़ों का लखोटिया ज्ञान है अर्थात् जब तक अग्नि के सामने रहें तब तक पिघले रहते हैं।''[२]

(मिती वैशाख सुदी ११ शनि सम्वत् १९३९ वि०)

श्री स्वामीजी ने फाल्गुन कृष्ण दशमी सम्वत् १९३७ वि० अर्थात् २४ फरवरी सन् १८८१ ई० को गो करुणा निधि नामक पुस्तक हिन्दी में लिखी। वह चाहते थे कि इसका अनुवाद अंग्रेजी में हो ताकि इङ्गलैण्ड निवासी अंग्रेज लोग गोरक्षा के महत्त्व को समझें। इस बात का उल्लेख उनके अनेक पत्रों में है।[३] किन्तु वह यह भी चाहते थे कि गोरक्षार्थ और आर्य भाषा अर्थात् हिन्दी के निमित्त अनेक स्थानों से सरकार में मेमोरियल जायें। इन बातों की चर्चा भी उनके अनेक पत्रों में है। यहाँ केवल दो पत्रों से कुछ शब्द दिये जा रहे हैं।

''गोरक्षार्थ कितनी सही हो चुकी। इसका भी उत्तर लिखना। इस समय (आर्य भाषा के) राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ जो मेमोरियल छपे हैं सो शीघ्र भेजना। और आप लोग भी जहाँ तक हो सके गोरक्षार्थ सही और आर्य भाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ शीघ्र प्रयत्न कीजिये।''[४]

(१४ अगस्त सन् १८८२ ई०—उदयपुर से)

---

१. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—तृतीय भाग, पृ० ६६।
२. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—चतुर्थ भाग, पृ० ३७।
३. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—चतुर्थ भाग, पृष्ठ २३, २९, ३०, ३१, ३२, ३७।
४. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—तृतीय भाग, पृष्ठ ५०।

दूसरे पत्र में भाषा और गोरक्षा के निमित्त यह लिखा है—

"आपको अति उचित है कि मध्य देश में सर्वत्र पत्र भेजकर बनारस आदि स्थानों से और जहाँ-जहाँ परिचय हो सब नगर व ग्रामों से मेमोरियल[1] भिजवाइये। यह काम एक के करने का नहीं। अवसर चूके वह अवसर आना दुर्लभ है। **जो यह कार्य सिद्ध हुआ तो आशा है कि मुख्य सुधार की एक नींव पड़ जावेगी।** आप स्वयं बुद्धिमान हैं। इसलिए विशेष लिखना आवश्यक नहीं। और गोरक्षार्थ कितनी सही हुई है। इस विषय में ध्यान देना अवश्य है।"[2]

(बृहस्पति शुद्ध श्रावण शुक्ल ३, सम्वत् १९३९ वि०)

आज कल नौकरी की समस्या जैसी जटिल है उसके लिये कहा ही क्या जाय। यह समस्या सन् १८८० ई० के आस-पास में भी कुछ बेढब अवश्य थी। कला-कौशल विषयक स्कूलों की आवश्यकता आज बहुत ज्यादा बताई जाती है किन्तु श्री स्वामीजी ने ऐसे स्कूल की आवश्यकता बहुत ही पहले सोची थी।BB एक पत्र में लिखा है—

"यह अब स्पष्ट है कि बहुत से पढ़े-लिखे लोगों को भी नौकरी नहीं मिलती, या वे जीवन-निर्वाह का प्रबन्ध नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था देखकर मैं एक कला-कौशल के स्कूल की आवश्यकता विचारता हूँ। प्रत्येक पुरुष को अपनी आय का १००वाँ भाग प्रस्तावित संस्था को देना चाहिये। उस धन से चाहे तो विद्यार्थी कला-कौशल सीखने जर्मनी भेजे जायें या वहाँ से अध्यापक यहाँ बुलाये जायें। जो कोई इस फण्ड के व्यय पर इन धन्दों को सीखे, उसे प्रतिज्ञा करनी होगी कि स्वशिक्षा समाप्त करने पर सभा या फण्ड की वह १२ वर्ष तक सेवा करेगा। यह प्रश्न यहाँ विचारा जा रहा है और जो कोई परिणाम निकलेगा तो हम आपको सूचना देंगे।"[3]

(३० नवम्बर सन् १८८० ई०—आगरा से)

स्पष्ट रहे कि श्री स्वामीजी के पत्रों की यह थोड़ी-सी बातें हैं। परन्तु ऐसा भी कभी-कभी अवश्य होता है कि केवल भेजने वाले के पत्र से ही पत्र का आशय भली-भाँति नहीं मालूम होता। जब उसके

---

१. आर्य भाषा के निमित्त—लेखक।

२. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—तृतीय भाग, पृष्ठ ५२ व ५३।

३. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—द्वितीय भाग, पृष्ठ ३२।

उत्तर का पता लगता है अथवा उस पत्र का पता लगता है जिसके उत्तर में वह पत्र लिखा गया है तब वास्तव में पत्र का रहस्य खुलता है। फलतः श्री स्वामीजी के कुछ पत्रों के साथ वह पत्र भी दिये जा रहे हैं जो कि श्री स्वामीजी के पत्र के उत्तर में हैं अथवा जिनके उत्तर में श्री स्वामीजी की ओर से पत्र हैं। ऐसे पत्रों से पत्रों का वास्तविक भाव भी पूर्णतया या बहुत कुछ मालूम हो जाएगा और श्री स्वामीजी तथा कुछ साधारण लोगों के पत्रों व हिन्दी के नमूने भी साथ ही साथ मालूम हो जायेंगे—

(१)

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग

संख्या ४८। ता० १ फरवरी सन् १८८२

श्री स्वामीजी महाराजजी योग्य पं० सुन्दरलाल वा दयाराम तथा भीमसेन का अभिवादन विदित हो।

पत्र आप का आया हाल जाना। अब कुल पुस्तक २० पौंड के कागज़ पर छपते हैं। पहिले २४ पौंड पर वेदभाष्य और २० पौंड पर अन्य पुस्तक छपते थे सो ज्ञात हो। और आप की आज्ञानुसार वर्ष २ का पुस्तकों का हिसाब तैयार करके भेजा जावेगा। परन्तु प्रयाग में यन्त्रालय १ अप्रैल सन् १८८१ को आया है सो अब ३० अप्रैल सन् १८८२ को वर्ष पूरा होगा। सो १ मई तक मैं हिसाब तैयार करके भेजूँगा। लाला बल्लभदासजी का हिसाब पिछले रजिष्टिरों में मिला नहीं है इससे नहीं लिखा। अब फारसी के रजिष्टिर[CC] जो लाला शादी राम के लिखे हैं उनको पं० सुन्दरलालजी आप खुद देखकर अब के पत्र में आप को लिखेंगे और हमने छब्बीस २६ फरमें का ठेका जो दिया था सो न चल सका इसमें पं० देबीप्रसाद और विश्वेश्वरसिंहजी ने भी बहुत प्रयत्न किया तथापि चल न सका सो अब २० फारम से अधिक एक महीने में नहीं छप सकते। तथा अव्ययार्थ के पुस्तक में कोठे बनाने से और भी देरी हुई। और अब आख्यातिक का भूमिका सहित छह फरमा छप गये हैं आगे छपता जाता है। और इस पुस्तक के बिल्कुल लौटने और नवीन बनाने में सब महाभाष्य सिद्धान्त और काशिका पुस्तकों का होता है इस से छपने के लिए नवीन कॉपी

बनाने में देर होती है और आप के यहाँ से ठीक-ठीक शुद्ध कॉपी आवे तो इतनी ढील न हो।

कागज का प्रबन्ध मुम्बई से हो जाना बहुत अच्छा है। इसका प्रबन्ध आप निश्चित कर लीजियेगा और अपने सामने एक बेल कागज का जिसमें २४ रीम होते हैं वह भेजवा दीजियेगा, चाहे जैसे पौंड का जैसा आप मुनासिब जानें। और मेरे पास कागज़ वाले का पता लिख भेजिये कि मैं आगे को उसी से कागज मँगाया करूँ। और छपने की स्याही भी आ जाया करे। आपने जो-जो पुस्तक जब-जब जहाँ मँगाये बराबर भेजे। वे पुस्तक कौन से हैं कि आपने मँगाये और यहाँ से न गये। जो आप की भेजी चिट्ठी ही मेरे पास न आई हो तो मैं लाचार हूँ जैसे कि आपने महाराजे उदयपुर का इश्तिहार भेजा और मेरे पास आज तक नहीं आया है कहीं डाक में मारा गया मैं लाचार हूँ। अब उस विज्ञापन को कृपा करके शीघ्र भेज दीजियेगा। मेला अच्छा हुआ भीड़-भाड़ ३०००००० तीस लाख करीब बहुत हुई। फिर बीमारी हैजे की अमावस्या को जो फैल गई इससे सब मेला उठा दिया गया। मासिक हिसाब २४ जनवरी को आप के पास भेजा है सो पहुँचा होगा। देर यों हुई कि आर्यभाई बहुत लोग वैदिक यन्त्रालय में ठहरे थे उनके आदर सत्कार से तैयार न कर सका। सो माफ करना और सब लोग यहाँ से प्रसन्न गये। हम लोगों को महाराजे उदयपुर को पदवी ठीक-ठीक मालूम नहीं थी और आपका भेजा विज्ञापन आया नहीं फिर सज्जन कीर्त्ति सुधाकर जो अखबार उदयपुर से आता है उसके आदि में जो महाराजा की पदवी लिखी है वही हमने छपवादी सो आप के देखने को भेजते हैं सो देख लीजिये। आगे आप जैसी आज्ञा करें उनके विषय में फिर छपवा दिया जावे। तब तक आप के वेदाङ्गप्रकाश और दूसरी बार सत्यार्थप्रकाश न छप जाएगा तब तक इस यन्त्रालय में दूसरा पुस्तक नहीं छपेगा। और जो आवश्यक होगा उसमें आप की आज्ञा ली जावेगी। और मेले में कोई पं० वा मुंशी नहीं मिला।[१]

आगे हम को टैप अधिक ढलवाने के वास्ते सीसा और सुरमा

१. यहाँ तक यह पत्र पण्डित भीमसेन के अक्षरों में लिखा हुआ है इसके आगे राय बहादुर पण्डित सुन्दरलालजी के अक्षरों में अङ्कित है।

चाहिये विलायती। देसी जो मिलता है उससे काम नहीं चलता यदि मुम्बई से उसके मँगाने का प्रबन्ध हो जाय तो बेहतर है। आगे मुनसी और पण्डित की हम को भी बड़ी तलास है पर ढब का कोई मनुष्य नहीं मिलता है। लाहौर से लाला जवाहिरसिंह मन्त्री आर्यसमाज के आये उनसे भी कहा उन्होंने कहा कि प्रयाग में तो नहीं पर लाहौर में बहुत मिल जायेंगे और उन्होंने यह भी कहा कि यह यन्त्रालय लाहौर में उठ जाय तो वहाँ के समाज के मेम्बर बड़ी उन्नति करें। मैंने कह दिया कि मुझको कुछ उजर नहीं है श्री स्वामी महाराज की आज्ञा मँगालो सो निश्चय है कि इस मध्ये में आर्यसमाज के लोग आप को लिखें। हिसाब आपको सब चीज़ का बहुत दुरुस्ती के साथ भेजा जाएगा पर हाल में कोई मनुष्य ऐसा नहीं है कि अच्छे प्रकार से काम करे जब तक बाबू यहाँ थे तब तक तो वह खुद देखते भालते थे जब से वह चले गये हैं तब से सिर्फ दयाराम ही है सो लिखने-पढ़ने का काम जैसा चाहिये वैसा नहीं होता है मैं भी इस बात को खूब जानता हूँ। पर जब तक कि मुन्शी अच्छा नहीं मिलेगा तब तक यह ही दिक्कत रहेंगी—और पं० भीमसेन भी कहते हैं कि हमारे पास काम बहुत बढ़ गया है सो यदि आपकी आज्ञा होय तो ज्वालादत्त को बुला लें १५; महीना लेगा पर उसको आपकी आज्ञा बिना बुला नहीं सकते हैं।

(१) का उत्तर

॥ ओ३म् ॥

पण्डित सुन्दरलालजी आनन्दित रहो!

विदित हो कि पत्र तुम्हारा आया। समाचार विदित हुआ। जो प्रतिमास में २० फारम वेद भाष्य के और १२ फारम वेदांग प्रकाशादि के छपें तो कुछ चिन्ता नहीं। परन्तु इतने से कम न छपना चाहिये। जो........के मन्त्री ने छापाखाना.........में होने के विषय में लिखा है यह बिलकुल बेसमझ की बात है। क्योंकि प्रथम तो जगह-जगह छापेखाने के होने में व्यर्थ हजारों रुपये खर्च होते हैं। और छापेखाने की प्रसिद्धि होने में भी बहुत काल लग जाता है। प्रबन्ध भी बिगड़ जाता है। और भी बहुत प्रकार की हानि हो जाती है। इससे छापाखाना प्रयाग ही में रहेगा।........में तो इस भाषा के जानने वाले कम्पोजीटरों

का भी मिलना दुर्लभ है। जो वह हम को लिखेगा तो हम उसको उत्तर दे देंगे। यह उसका लिखना बिलकुल व्यर्थ है।

तुम और बाबू विश्वेश्वरसिंह छापेखाने की तरफ दृष्टि रखोगे और भीमसेन को चेतन कर दोगे। मिति फाल्गुन वदी ३ सोमवार सम्वत् १९३८।[1]

(ह० दयानन्द सरस्वती)

(२)

॥ ओ३म् ॥

श्री मन्महाराजाधिराजेषु। शोभितसमाजेष्वस्मदुद्धारकेषु॥ श्रीमत्स्वामीदयानन्द सरस्वतीष्वस्मत् कृत्ता नतिततेयाधाराः सदोल्लसंतु कोटिशः॥

उदत्तस्त्वेषः

यहाँ पर राज में एक मासिक पत्र जिसका नाम **धर्म जीवन है लाहौर से प्रतिमास आता है। अब की बार मारच सम्बन्धी पुस्तक १ अंक ३ जो उसमें यह समाचार मुद्रित था श्री स्वामी दयानन्दजी सरस्वती को महाराज जोधपुर ने जन्म भर के लिये कैद कर दिया है। यहाँ के जयपुर गजट वाले ने भी इस समाचार को अपने पत्र में मुद्रित कर दिया।** इस असत्य समाचार को देख हमारी सभा को बड़ा शोक हुआ क्योंकि यह प्रतिष्ठा भंग समाचार जिसको ताजी रात हिन्द में इजाले हैसियत उर्फी लिखा है साक्षात विदित है इस कारण। यहाँ की अन्तरंग सभा से प्रबन्ध होकर एक पत्र इसका उत्तर लेने के लिए लाहौर धर्म जीवन के पास भेजा गया है और लाहौर समाज तथा मेरठ समाज को इस विषय में सम्मति लेने के लिये लिखा गया है। क्योंकि इस सभा का मनोरथ इस विषय में नालिश करने का है इस कारण आपके चरणार्विन्द में प्रार्थना है इस विषय में क्या अनुष्ठान होना उचित है।

ओम्तत्सत्

बिहारीलाल

मन्त्री वैदिक धर्म सभा

सवाई जयपुर

---

१. ६ फर्वरी सन् १८८१।

(२) का उत्तर

(ओ३म्)

श्रीयुत बिहारीलालजी आनन्दित रहो।

धर्म–जीवन और मित्र–विलास[DD] **आदि** पत्रों का झूठ बकना ही रात–दिन काम है। और जैपुर गजट वाला भी उनके सदृश ही बुद्धि रखता होगा। आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। जैसी सम्मति लाहौर और मेरठ वाले दें वैसी करो। तुम जानते थे कि स्वामीजी जोधपुर में गये ही नहीं। फिर तुम को शोक कैसे हुआ। और हमारे लिये ऐसे सैकड़ों मनुष्य बका करते हैं कि जैसे **मित्र–विलास और धर्म–जीवन आदि पत्रों के मांसाहारी काश्मीरी ब्राह्मण आदि लाहौर में बका करते हैं।** सब से हमारा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मिति चै० व० ५ बुधवार सं० १९३९

(शाहपुरा) ९ मार्च १८८२ गुरुवार

(हस्ताक्षर) [दयानन्द सरस्वती]

(३)

आर्यसमाज फर्रुखाबाद

२–५–८३ ई०

श्रीमत्सच्चिदानन्दस्वरूपाय परमगुरवे नमः

मान्यवर

कृपा–पत्र आया। इतिवृत ज्ञात किया, मान्यपत्र की प्रति पहुँची, हिसाब देख लिया ३००) रु० की हुण्डी इस पत्र के साथ रख दी है। पाठशाला की यथावत् व्यवस्था दूसरे पत्र में इसके साथ नत्थी है।

वैदिक–प्रेस में पं० रामनाथ को भेजा था इस अन्तर में दूसरा मनुष्य वहाँ नियुक्त हो जाने से रामनाथ लौट आए—यन्त्रालय का हिसाब–किताब, बही–खाता दुरुस्त नहीं हैं। हमारी समझ में जब तक कोई सराफी पढ़ा अच्छा प्रामाणिक मुनीम नहीं रहेगा तावत्काल हिसाब ठीक–ठीक नहीं चल सकेगा, यह रुपये का विषय है इसमें ठीक–ठीक, प्रबन्ध होना चाहिए आगे जैसी आपकी सम्मति हो, उचित जान निवेदन किया, शेष सर्वप्रकार आनन्द है। शाहपुरा के सुसमाचारों से बाधित कीजिए।

कालीचरण

(३) का उत्तर

ओ३म्

श्रीयुत कालीचरण रामचरणजी आनन्दित रहो।

पत्र तुम्हारा २-५-८३ का लिखा हमारे पास सहित ३००) की हुंडी के आया। मैं भी जानता हूँ वैदिक यन्त्रालय का हिसाब गड़बड़ है। परन्तु अब पण्डित सुन्दरलालजी का आदमी गया है। यह हिसाब किताब लिखा करेगा। इससे आशा है कि सुधर जाएगा। यदि न सुधरेगा तो जैसी आप लोगों की सम्मति यही कि एक सराफी पढ़ा हुआ अच्छा प्रामाणिक आदमी आप लोगों की सम्मति से लिया जाएगा। इसके लिये आज मैंने पण्डित सुन्दरलालजी को लिखा है। उनकी सम्मति आने पर मैं लिखूँगा। अथवा परवारा (सीधे) पण्डित सुन्दरलालजी तुम को लिखेंगे। लाला सेवारामजी तथा बाबूजी आदि को मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। और यह एक फोटोग्राफ तथा छोटा सा पत्र रामानन्द को दे दीजियेगा। और पाठशाला के कक्षा विषय में अवकाश पाकर लिखूँगा और यहाँ का समाचार भी।

शाहपुरा

मि० वै० शु० सं० १९४०।[१]

दयानन्द सरस्वती

(४)

ओ३म्

श्रीयुत मनोहरदास खत्री संपादक भारतमित्र आनन्दित रहो—आपने मेरे भेजे पत्र को प्रसन्नतापूर्वक छाप दिया उसका उपकार मानता हूँ परन्तु शेष विषय भी छापने के योग्य जान कर मैंने लिखा था क्योंकि इस पूर्व पक्ष के सम्बन्धी थियोसोफीकल सुसायटी के प्रधान हैं इसीलिए यह विषय लिखा था और मैं आप को सुहृदभाव से लिखता हूँ कि यदि आप अपने भारत मित्र समाचार की विद्वानों में प्रतिष्ठा चाहें तो करणल ओलकाट आदि के करामात वा मिसमिरेजम से अनेकों के रोग निवारण आदि नितांत मिथ्या विषयक भी न छापें नहीं तो समाचार की प्रतिष्ठा नष्ट हो जाएगी। अब थोड़े समय में

१. १० मई बृहस्पति सन् १८८३।

करणेल ओलकाट लाहौर में गए थे उनका रोग निवारणादि सामर्थ्य अत्यन्त झूठ बड़े-बड़े बुद्धिमान् लाहौर निवासियों ने निश्चित करके लिखा कि इनका यह सब ऊपर का ढोंग है और जितना व्यवहार बाहर वा भीतर का थियासोफीष्टों का मैं जानता हूँ इतना आर्यावर्तीय लोगों में बहुत थोड़े लोग जानते हैं। जब इन लोगों ने झूठे दांभिक मिथ्या छल व्यवहारों में मेरी सम्मति लेनी चाही मैंने नहीं दी तभी से वे अपना प्रपंच पृथक् करने लगे और मैं उनसे पृथक् हो गया। अस्तु। थोड़े ही लेख से आप बहुत समझ लेंगे एक श्री कृष्ण खत्री ने ता० २८वीं जुलाई सन् १८८३ को लिखकर हमारे पास भेजा है और उन्होंने बहुत से सनातन आर्य धर्म के प्रयोजनादि विषयों में आर्य पंचांग बनाने के लिए मुझ से सहाय चाहते हैं तथा आर्यसमाजों से भी जिस पत्र पर लेख किया है वह पत्र भारतमित्र कार्यालय का है इसलिए मैं आप से पूछता हूँ कि उक्त महाशय किस प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव वाले हैं और जैसा उनने लिखा है कि इसमें भारतमित्र सम्पादक की भी विशेष सहानुभूति है आप इनको योग्य समझते हैं। यदि इस कार्य के योग्य समझते हों तो इस पत्र को देखते ही मुझको प्रत्युत्तर लिखिये। तत्पश्चात् आर्यसमाजों को उचित होगा, लिखा जाएगा और जो एक पत्र बहुत दिन हुए मैंने लिखा था जिसमें गोरक्षार्थ अर्जी देने का मसोदा वहाँ के वकील वारिष्टरों से पूछ के आप लिखें उसका क्या हुआ। अब उसमें अधिक विलम्ब करना उचित मैं नहीं समझता यहाँ जोधपुर का समाचार पश्चात् लिखा जाएगा।[१]

(४) का उत्तर

श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य्य

श्री १०८ स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी महाराज की सेवा में

श्रीयुत महाशय श्रीकृष्णजी खत्री सम्पादक भारतमित्र

कलकत्ता का पत्र।

---

१. इस पत्र के अन्त में श्री स्वामी दयानन्दजी सरस्वती महाराज का हस्ताक्षर नहीं है परन्तु इस पत्र में श्रीयुत महाशय श्री कृष्णजी खत्री कलकत्ता के २८ जुलाई १८८३ के पत्र का वर्णन है जो श्री स्वामीजी महाराज के नाम उक्त महाशयजी ने भेजा था।

भारतमित्र कार्यालय।

नं० ६० क्रौसस्ट्रीट कलकत्ता, १८ आगष्ट १८८३

महानुभव!

आपके कृपा पत्र से कृतार्थ हुआ। आप 'भारतमित्र' के यथार्थ हितैषी हैं इसलिए भारतमित्र आपके पास ऋणी है। हम आपको अनेक धन्यवाद देते हैं। परन्तु इस अवसर पर इसका कुछ विवरण आपसे कहना उचित समझता हूँ।

देश हित के लिये कई मित्रों ने मिलकर 'भारतमित्र' पत्र प्रकाशित किया है। इसमें किसी का कुछ स्वार्थ नहीं है। मित्रगण अपना-अपना अवसर समय इस पत्र की सेवा में लगाते हैं। इन ही मित्र वर्गने एक कमेटी स्थापित की है। उसी भारतमित्र कमेटी से सब कार्य निर्वाह होता है। बाबू मनोहरदास खत्री भारतमित्र के सम्पादक नहीं है जैसा कि आप जानते हैं परन्तु मैनेजर (कार्य सम्पादक) हैं। पं० छोटूलाल मिश्र इस पत्र के सम्पादक है। कई मास से विषय कर्म में व्याप्त रहने के कारण यह भारतमित्र का सम्पादन नहीं कर सकते। इनके एक मित्र श्री कृष्ण क्षत्री ने सम्पादन का भार लिया है। भारतमित्र में अब सब लेख उन्हीं का है। वास्तव में अब वही भारतमित्र सम्पादक हैं। अवश्य इन सब लेखों में छोटूजी की सम्मति रहती है। यही श्री कृष्ण क्षत्री 'ज्ञानवर्धिणी' सभा के सम्पादक भी हैं जिनके विशेष परिश्रम से गोरक्षा विषय के हस्ताक्षर यहाँ से आपकी सेवा में गये थे। यह महाशय अंग्रेजी में भी व्युत्पन्न हैं। इस पत्र के लेखक भी वही श्री कृष्ण क्षत्री हैं।

अब मैं (श्री कृष्ण क्षत्री) आपसे परिचित हो गया। आप भारतमित्र-पत्र को देखकर जैसी कुछ मेरी योग्यता समझें। "आर्य पंचांग" बनाने से मेरी यह इच्छा है कि इस से सर्वसाधारण को आर्यसमाज के वैभव का ज्ञान हो जाएगा। इन समाजों से भारतवर्ष की कहाँ तक उन्नति हुई और होने की सम्भावना है, यथार्थ में स्वामी दयानन्दजी-से आर्य भूमि का कैसा हित हुआ, सबको 'आर्य पंचांग' से घर बैठे इस विषय का ज्ञान हो जाएगा। इसी अभिप्राय से मैंने आपकी सहायता माँगी। अब आप जैसा उचित समझें। लाहौर 'आर्या'[EE] के सम्पादक, अजमेर, प्रयाग, फर्रुखाबाद, साजिहान[FF] इत्यादि नगरों

के आर्यसमाजों के मन्त्री हम लोगों पर विशेष कृपा रखते हैं।

गोरक्षा विषय के आवेदन पत्र के लिए आपने लिखा सो उसका यत्न हो रहा है। यथा समय में आपको लिखूँगा।

कार्नेल आलकट साहब के विषय में आपके उपदेश के लिये मैं कृतज्ञ हूँ। ऐसा कोई विषय भारतमित्र में नहीं रहता जिसका विशेष प्रमाण हमें न मिला हो। परन्तु जब बात-बात में हमें दूसरे सम्वाद पत्र और मान्य मनुष्यों पर निर्भर करना होता है तो किसी समय में भ्रम होना असम्भव नहीं है। अन्त में 'आर्य पंचाग' के विषय में आपकी इच्छा जानने की आशा लगी रही। आपकी अभिरुचि जानने पर इस विषय का एक विज्ञापन भारतमित्र में दूँगा। कृपा कर पत्र का उत्तर शीघ्र दीजियेगा।

आपका कृपाकाङ्क्षी
श्रीकृष्ण क्षत्री
सम्पादक 'भारतमित्र'

समस्त प्रकाशित पुस्तकों में श्री स्वामीजी की ओर से कुल २०० के लगभग पत्र पाये जाते हैं। इनमें से सब से पुराना मेरे विचार से[१] फाल्गुन बदी २ इंदुवार सम्वत् १९३१ वि० का है जो कि श्री गोपालराव हरिदेशमुखजी के नाम का है और तृतीय भाग के पृष्ठ १४२ पर आरम्भ होता है।

श्री स्वामीजी ने लगभग २० वर्ष तक काम किया था। इतने काल के कुल २०० के लगभग प्रकाशित पत्र व थोड़े से अन्य अप्रकाशित पत्र वास्तव में बहुत कम हैं। सच तो यह है कि जिस समय में इनके निमित्त कुछ काम करने की आवश्यकता थी उस समय में काम नहीं किया गया। निस्सन्देह यह पहली उदासीनता हमारी ओर से थी किन्तु जो पत्र बड़ी खोज व परिश्रम के पश्चात् प्रकाशित हुये हैं उनके प्रति भी हमारी उदासीनता कुछ कम नहीं है, क्योंकि श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा सम्पादित पत्र-व्यवहार के छपने की दुबारा नौबत शायद नहीं आई[२] और न इस एक के बाद कोई और पुस्तक उनकी ओर से पत्रों के विषय में प्रकाशित हुई है। इसके

---

१. २२ फरवरी सन् १८७५ ई०।

२. पत्र-व्यवहार की कुल प्रतियाँ पहली बार केवल एक हजार ही छपी थीं।

उपरान्त यह भी स्पष्ट रहे कि श्री भगवद्दत्तजी द्वारा जिन पत्रों का सम्पादन हुआ है उनमें से भी किसी भाग के दुबारा छपने की नौबत शायद अभी तक नहीं आई है। प्रत्येक भाग यद्यपि एक हजार से अधिक नहीं छपा है।

सुना है कि श्री स्वामीजी के कुछ अप्रकाशित पत्र श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर में हैं।[GG] कुछ सम्भवतः पं० भगवद्दत्तजी अथवा श्री प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधिकार में है। २६ पत्र श्री डॉक्टर धीरेन्द्रजी वर्मा हेड हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय के पास हैं[1] मैंने इनको देखा है। उनकी कृपा से मैंने उन पत्रों की नकल ले ली है। श्री डॉक्टर साहब की ओर से एक लेख उन पत्रों के सम्बन्ध में इलाहाबाद 'हिन्दुस्तानी' (हिन्दी) पत्रिका अप्रैल सन् १९४० में निकल चुका है।[HH] सम्भव है कि कुछ पत्र और कहीं हों।

सन् १८७३ ई० से श्री स्वामीजी ने हिन्दी भाषा से अधिक काम लेना और उसमें व्याख्यान देना आरम्भ किया। क्योंकि सन् १८७३ ई० की २३ फरवरी को कलकत्ता में उनके एक संस्कृत व्याख्यान का अनुवाद एक सज्जन ने अशुद्ध किया।[II] उस समय तक उन्होंने संस्कृत भाषण का ही अभ्यास रखा था। फलतः इसी घटना के पश्चात् उन्होंने हिन्दी में उपदेश करने का निश्चय किया। निदान श्री स्वामीजी के जो पत्र उक्त समय के पहले के रहे होंगे वह सब संस्कृत में ही रहे होंगे। अधिक और न लिखते हुये यह कह देना आवश्यक है कि सब पत्रों को, जो मिल सकें अच्छे ढंग पर प्रकाशित होने की बड़ी आवश्यकता है। मैंने इस विषय में कुछ कार्य कर रखा है। यदि कोई सज्जन या कोई सभा इस काम को पूर्ण करने के लिये तैयार हो तो मैं कुछ सम्मति सहित समस्त सामग्री सहर्ष दे दूँगा।[JJ]

हमारे पाठकों पर यह बात भी भली-भाँति स्पष्ट रहे कि पत्र-व्यवहार विषयक प्रकाशित ग्रन्थों आदि में जो विज्ञापन व प्रशंसा-पत्र आदि हैं वह भी सब के सब पत्रों के मुकाबिले में कुछ कम उपयोगी नहीं है। उनकी ओर भी पाठकों को विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। उनका प्रकाशन भी टीका-टिप्पणी सहित अच्छे रूप में (पत्रों के साथ ही साथ) होना कुछ कम अच्छी बात न होगी।

१. इनमें से १६ पत्र श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा के नाम हैं।

अब दो विज्ञापनों को नीचे दिया जा रहा है। एक वह जिसे उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण (सन् १८७५ ई०) के बाबत निकाला था और दूसरा वह जो कि वेदभाष्य के अपूर्व होने के सम्बन्ध में निकाला गया था।

विज्ञापन (१)

सब को विदित हो कि जो-जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूँ विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो-जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश वा संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्य-सूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं, वे उन-उन ग्रन्थों के मतों को जानने के लिये लिखे हैं। उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूँ। जो-जो बातें वेदार्थ से निकलती हैं उन सब को प्रमाण करता हूँ क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य हैं। और जो-जो ब्रह्माजी से लेकर जैमिनि मुनि पर्यत महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रन्थ हैं, उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूँ। और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ठ और २५ पंक्ति में पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे और जितने मर गये हैं उनका तो अवश्य करे। तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिए कि जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परम धर्म है और जो-जो मर गये हों उनका नहीं करना, क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुँचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादि से दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं। इस विषय में वेद-मन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अंक के पृष्ठ २५१ से लेके १२ अंक २६७ पृष्ठ तक छपा है वहाँ देख लेना।[1]

---

१. यह विज्ञापन ऋग् और यजुर्वेद भाष्य के अंक १ और २ के टाईटल के पृष्ठ पर छपा है। इससे यही विदित होता है कि ऋषि ने इसे सं० १९३५ मास श्रावण में लिखा होगा।

विज्ञापन (२)

भाष्यस्यापूर्वत्वे दृष्टान्ताः संक्षेपतोऽन्येपि लिख्यन्ते। तत्र सत्ये-ष्वार्षेषु सनातनग्रन्थेषु रूपकाद्यलङ्कारेण सत्यविद्या-प्रकाशिकाः प्रमाण-युक्तिसिद्धा अनुत्तमा बह्व्यः कथा लिखिताः सन्ति। तासां मध्याद्दिग्दर्शन-वत्काश्चित्कथा अत्र वेदभाष्यभूमिकायां मयोल्लिखिताः। यासामज्ञाना-दाधुनिक पुराणग्रंथेषु भ्रान्त्या मनुष्यैस्ता अन्यथैव लिखिता उपदिश्यन्ते श्रूयन्ते च। तत्परीक्षार्थं संक्षेपतोऽत्रविज्ञापनपत्रेपि काश्चि-ल्लिख्यन्ते। तद्यथा। प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये तामृश्योभूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्तस्य यद्रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावा-दित्त्योऽभवत्। एतरेयब्रा० पंचिका ३ अध्याय ३। प्रजापतिः सविता। शतप० काण्डे १० अध्यायः २। तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्या। निरु० अध्याय ४ खं० २१। द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्त बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्। उत्तानयोश्चम्वो ३ योर्निरन्तरत्रापि तादुतु-र्गर्भमाधात्। निरु० अध्याय० ४ खंड २१। शामद्वह्निर्दुहितुर्नपत्यङ्गाद्विद्वां ऋतस्य दीधितिं सपर्यम्। पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्संशग्म्येन मनसा-दधन्वे। ऋग् मन्त्रद्वयमिदम्। ज्योतिर्भाग आदित्यः। निरु०। अ० १२। खंड १।

॥ भाषार्थ ॥

"इस भाष्य के अपूर्व होने में तीन कथा दृष्टान्त के लिये इस विज्ञापन पत्र में संक्षेप से लिखते हैं उनमें से एक यह कथा है कि जिसको श्रीमद्भागवतादि नवीन ग्रन्थों में बहुत विपरीत करके लिखी है जिस कथा को वेद विरोधी मत वाले नहीं जानके लोगों को मिथ्या बहका के अपने चेले कर लेते हैं और जो वेद मत वाले हैं वे भी सत्य कथाओं को नहीं जानने से और मिथ्या कथाओं को सुन के भ्रान्त होके उनके चेले हो जाते हैं सो देखो चित्त देके कि कितना बड़ा भ्रम मनुष्यों को अज्ञान से हुआ है (प्रजापतिर्वै०) प्रजापति नाम है सूर्य का क्योंकि सब प्रजा का जो पालन होना उसका मुख्य हेतु सूर्य ही है। उसकी दो कन्या हैं। एक द्यौः अर्थात् प्रकाश और दूसरी उषा जो चार घड़ी रात्रि रहने से प्रातःकाल पूर्व दिशा में किंचित्प्रकाश होता है क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होता है वह उसका सन्तान कहाता है सो इन दोनों का पिता की नाईं सूर्य है और उन दोनों को सूर्य की कन्या

की नाईं समझना। उषा जो सूर्य की पुत्री उसमें पिता जो सूर्य उसने अपना किरण रूप वीर्य को डाला। उन दोनों के समागम से यह जो आदित्य अर्थात् प्रकाशमय दिन है। यह एक पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १ ॥ तथा इसी प्रकार से पर्जन्य जो मेघ है सो पिता स्थानी है और पृथिवी उसकी कन्या स्थानी है क्योंकि जल से पृथिवी की उत्पत्ति होती है। इस से ये दोनों पिता पुत्रवत् हैं सो अपनी कन्या जो पृथिवी उसमें मेघ जो पिता वह वृष्टि द्वारा जल रूप वीर्य को डालता है। इन दोनों के परस्पर समागम से गर्भ धारण होने से अन्न, औषधि और वृक्षादि अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं। यह पिता और दुहिता की रूपकालंकार कथा से उत्तम विद्या का अत्यन्त प्रकाश होता है इस उत्तम कथा को बिगाड़ के अज्ञानी लोगों ने बुरी प्रकार से लिखी है। दूसरी यह कथा है जिसको बहुत प्रकार से लोगों ने पुराणों में बिगाड़ के लिखी है।''

हाँ, पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि जो पत्र श्री स्वामीजी की सेवा में अनेक लोगों की ओर से पहुँचे हैं उनको भी भली-भाँति एकत्र कर देने व प्रकाशित करने की कुछ कम आवश्यकता नहीं है। जो पत्र श्री स्वामीजी के पत्र के उत्तर में है अथवा श्री स्वामीजी का पत्र जो किसी के पत्र के उत्तर में है—दोनों की बाबत यथोचित उल्लेख हो कि यह अमुक के उत्तर में है अथवा अमुक इसके उत्तर में है। यदि ऐसा किया जाएगा तो एक बड़ी उत्तम बात होगी।

अब इस विषय की समाप्ति से पहिले श्री डाक्टर धीरेन्द्रजी वर्मा के पास वाले पत्रों में से श्री स्वामीजी के उन तीनों पत्रों को यहाँ दिया जा रहा है जो कि आद्योपान्त श्री स्वामीजी के कर-कमलों से ही लिखे हुये हैं। इन तीनों में से एक संस्कृत में है। उसका भाषा अनुवाद भी दिया जाएगा। यह संस्कृत पत्र, भाषा अनुवाद सहित और इसके पहले का हिन्दी पत्र दोनों 'हिन्दुस्तानी' (हिन्दी) पत्रिका प्रयाग में प्रकाशित हो चुके हैं और हिन्दी का पहला पत्र 'सरस्वती' अप्रैल सन् १९४० ई० में मेरे ही एक लेख में छपा है और किसी पुस्तक में नहीं छपा है।

ज्ञात रहे कि यह तीनों पत्र स्वर्गीय श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा के नाम के हैं जो कि श्री स्वामीजी के बड़े श्रद्धालु शिष्य थे। यह भारत

से बाहर चले गये थे। भारत के क्रान्तिकारी दल के मामले में इनका विशेष हाथ रहा है। यह भारत में वापस नहीं आ सके थे और विदेश में ही स्वर्ग को सिधारे थे।[KK]

(१)

संवत् १९३५ वि० फाल्गुन शु० ८ शनि० ता० १ मार्च सन् १८७९।

पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा आनन्दित रहो। ता० २४ फरवरी का लिखा पत्र आपका आया सब हाल विदित हुआ। मेरी ओर से पाताल देशवासी लोगों[१] को बहुत बहुत प्रेम प्रीति के साथ आशीर्वाद यथोचित कह के कुशलक्षेम पूछना। और वे वहाँ कितने दिन रहके किधर-किधर जाना होगा जब लाहौर आदि समाजों में जाना हो तब पहिले ही हमको विदित कर देना उचित है उनका सत्कार यथायोग्य सर्वत्र हो। और वे मुम्बई में नवीन समाज और थियोसोफिकल सुसाइटी का स्थापन करेंगे सो क्या बात है? समाज तो है ही पुनर्नवीन समाज और थियोसोफिकल का स्थापन करना कुछ समझ में नहीं आया। इतना खुलाशा लिखो जिससे समझना सुगम हो। आगे जो रुपयों के विषय में लिखा सो विदित हुआ। उन सब की इच्छा हो वेदभाषादि के छपाने में खर्च हो तो अच्छा है आगे इससे अधिक परोपकारक विषय हमको नहीं विदित होता। आगे जैसी सब की प्रसन्नता हो सो करें। आगे एक मुन्सी समर्थदान[LL] वेदभाष्य का काम वहाँ करेगा। यह बड़ा भद्र पुरुष है नागरी पारसी तो अच्छी तरह से जानता है थोड़ी-सी अंग्रेजी भी जानते हैं अपने घर का प्रतिष्ठित मातवर पुरुष है पर यहाँ हरद्वार से दो चार दिनों में मुम्बई आने के लिये रवाना हो के वहाँ पहुँचेगा इसको सब काम छापे वालों से और कागज वालों से नियम व्यवहार करा देना और इसको किसी प्रकार का दु:ख न हो स्थान आदि का प्रबन्ध कर देना सब से मिलाप भी करा देना और एक चपरासी भी मातवर आगे का हो तो वही नहीं तो कोई दूसरा रखवा देना ठीक-ठीक व्यवस्था करा देना चाहिये।

(दयानन्द सरस्वती)

---

१. कर्नल आल्काट तथा मैडम ब्लैवेट्स्की से अभिप्राय है।

(२)

सं० १९३५ फा० शु० ११ मङ्गल ता० ४ मार्च सन् १८७९

पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा आनन्दित रहो तुम्हारा ता० २६ फरवरी का लिखा पत्र आया सब हाल विदित हुआ। मैं बहुत शोक इस बात में करता हूँ कि हमारे प्रिय बन्धुवर्ग पाताल देश निवासी लोगों को मुम्बई में आ के मिल नहीं सकता क्योंकि हरद्वार में चैत्र की समाप्ति पर्यन्त ठहरने का नोटिस फाल्गुन शुदी ६ गुरुवार से दे चुका हूँ। और यहाँ इस बात की प्रसिद्धी भी कर चुका हूँ। अब इस बात को अन्यथा नहीं कर सकता। जब वे इस देश में लाहौर आदि के समाजों को देखने को आवेंगे तब यहाँ वा कहीं अत्यन्त प्रेम के साथ उन से मिलूँगा और बातचितें भी यथोचित होंगी। उनसे मेरा आशीर्वाद कह के कुशलक्षेम प्रेम से पूछना। और जो तुमने समाज के विषय में लिखा कि न आ ओगे तो यहाँ का आर्यसमाज टूट जाएगा। क्या तुमने समाज हरिचन्द्र चिन्तामणि के ही भरोसे किया था और जो मेरे आने-जाने पर ही समाज की स्थिति है तो मैं अकेला कहाँ-कहाँ आ-जा सकता हूँ। जो समाज में अयोग्य प्रधान हो उसको छुड़ा कर दूसरा नियत करके समाज का काम ठीक-ठीक चलाना चाहिये। कल यहाँ से चलकर मुंशी समर्थदान वेद भाष्य के काम पर नियत हो के मुम्बई को आते हैं तुम से मिलेंगे। छापे वालों और कागज वालों से ठीक-ठीक नियम करा देना और बाबू हरिचन्द्र चिन्तामणि से भी सब पुस्तक पत्र दिला देना सब हिसाब किताब करा के शीघ्र खुलासा करा देना और इनको मकान आदि का क्लेश कुछ भी कभी न होने पाये।

दयानन्द सरस्वती

(३)

सं० १९३५ फाल्गुन शुदी १२ बुधवार ता० ५ मार्च १८७९

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठ्रे पमायुक्तेभ्यः श्रीयुत श्यामजिकृष्णवर्मभ्यो दयानन्द सरस्वती स्वामिन आशिषो भूयासुस्तमांशमिहास्ति तत्रात्यं भवदादीनां च नित्यमाशासे। अग्रे इदं बोध्यमेकं मनस्विनं समर्थदाननामानं पुरुषं वेदभाष्यप्रबन्धार्थं भवत्सनीडं मुम्बापुर्या वर्त्तमानेऽहनि प्रेषयामि यथा-समयमयं तत्र प्राप्स्यत्यस्मै कथंचित्क्लेशो न स्यात्तथानुष्ठेयं वेदभाष्य-सम्बन्धिकार्य्याणि संसेधनीयानि नैवात्र विलंबः कार्य्य इति। ये तत्र

सभासदः सज्जनाः सन्ति तैः सह संमेलनम्। ये तत्र पाताल देशनिवासिनो वर्त्तन्ते तेभ्योऽत्यन्तादरेणाशिषः संश्राव्य कुशल क्षेमता प्रष्टव्या। यथा मयि प्रीति वर्त्तते तथैवैतस्मिप्रेमभावो विधेयो विद्याऽध्ययन सहायः स्थानभृत्य प्रबन्धश्च यथावत्समर्थदानस्य कार्य्य इति च।

दयानन्द सरस्वती

स्वामीजी के उपर्युक्त संस्कृत पत्र का हिन्दी रूपान्तर निम्न है—

सं० १९३५ फाल्गुन सुदी १२ बुधवार ता० ५ मार्च १८७९

स्वस्ति श्रीमत् उपमायुक्त श्रीयुत् श्यामजी कृष्ण वर्मा को स्वामी दयानन्द सरस्वती के आशीर्वाद। यहाँ कुशल है, वहाँ आप लोगों के कुशल की आशा करता हूँ। आगे यह जानना कि समर्थदान नाम के एक मनस्वी पुरुष को वेदभाष्य के प्रबन्ध के लिये आज आप के पास बम्बई शहर को भेज रहा हूँ। जिस समय ये वहाँ पहुँचें इन्हें कोई क्लेश न हो इसका यत्न आपको करना चाहिये। वेदभाष्य सम्बन्धी कार्यों को साधन करना है और इसमें अब विलम्ब न होना चाहिये इति। जो सभासद सज्जन वहाँ हैं उनके साथ मिलना चाहिये। वहाँ जो पाताल देशवासी सज्जन हैं उन्हें भी बड़े आदर से आशीर्वाद सुनाकर उनका कुशल क्षेम पूछना। जैसा प्रेम मुझमें है वैसा ही प्रेमभाव इनसे भी रखना और विद्याध्ययन में इनकी सहायता तथा समर्थदानजी के ठहरने का स्थान और नौकर का प्रबन्ध कर देना। इति।

दयानन्द सरस्वती

चतुर्थ अध्याय

मनोरंजक व अनोखी बातें

श्री स्वामी दयानन्दजी की प्रतिभा अद्वितीय थी। उनका जीवन-चरित और उनके ग्रन्थ इस बात के साक्षी हैं। उन्होंने बहुत-सी बातों को बड़ी गम्भीरता से समझाया व सुलझाया है। पर अनेक अवसरों पर उनकी बातें बड़ी अनोखी व विनोदपूर्ण ढङ्ग को भी हुई हैं। फलतः इसी प्रकार की कुछ बातें यहाँ पर दी जाती हैं।

(१)

एक ज्योतिषी स्वामीजी महाराज के विचारों से परिचित न थे। अतः स्वामीजी के पास पहुँचे। स्वामीजी ने ज्योतिषी से पूछा—आप किस प्रयोजन से आये हैं?

ज्योतिषी—मैं ज्योतिषी हूँ महाराज! कुछ प्राप्ति की आशा से आया हूँ।

स्वामीजी—यदि आपको आते समय ज्योतिष द्वारा यह ज्ञान हो गया था कि यहाँ से कुछ प्राप्त होगा तो आपका ज्योतिष झूँठा, क्योंकि मैं तो कुछ भी नहीं दूँगा। और यदि आपको यह पता लग गया था कि यहाँ से कुछ नहीं मिलेगा तो आप व्यर्थ ही आये।

(२)

एक बार एक पण्डितजी शास्त्रार्थ के विचार से स्वामीजी के पास आये। स्वामीजी जहाँ थे वहीं एक चबूतरा था और एक वृक्ष भी था। स्वामीजी नीचे ही एक आसन पर विराजमान थे। पर पण्डित महाराज आकर के चबूतरे पर बैठे। लोगों ने इस बात को अच्छा न समझा और पण्डितजी से नीचे बैठने के लिये ही प्रार्थना की पर पण्डितजी न माने।

ऐसा होने पर स्वामीजी ने लोगों से कहा—कोई हर्ज नहीं। पण्डितजी को ऊँचे स्थान पर ही बैठे रहने दीजिये। यदि ऊँचे स्थान पर ही बैठने में बड़ाई है तो वृक्ष पर बैठा हुआ कौवा पण्डितजी से भी

अधिक ऊँची जगह पर है। अस्तु, वही बड़ा हुआ।

(३)

जाड़े के दिन थे। श्री स्वामीजी से एक सज्जन रामअधीन ने पूछा—आज कल तो जाड़ा बहुत पड़ता है किन्तु आपको क्यों जाड़ा नहीं लगता?

स्वामीजी (रामअधीन से)—आपके मुँह को जाड़ा क्यों नहीं लगा करता?

रामअधीन—यह सदैव खुला ही रहता है।

स्वामीजी—यही हाल हमारे शरीर का है। यह हर समय खुला रहता है इस कारण इसको जाड़ा नहीं लगता।

(४)

श्री स्वामीजी के समय में कुछ लोग बहुत विद्वान् समझे जाते थे अथवा वह अपने को बहुत विद्वान् मानते थे। ऐसे लोगों से जब यह कहा जाता था कि श्री स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ कीजिये तो इनमें से अनेक लोग नाना प्रकार के बहाने से बचते रहे।

कुछ लोग कहते थे कि वह (श्री स्वामीजी) नास्तिक हैं। हम नास्तिक का मुँह देख नहीं सकते। ऐसा सुनकर श्री स्वामीजी कहा करते थे कि यदि मेरा मुँह नहीं देखना चाहते तो परदे की आड़ करके शास्त्रार्थ करें। परन्तु ऐसी दशा में भी कुछ लोगों ने शास्त्रार्थ करना पसन्द न किया। आरा के एक पण्डितजी ने मजबूरन परदे के आड़ से शास्त्रार्थ किया और वह परास्त हुये।

(५)

लुधियाना की बात है कि एक पण्डितजी शास्त्रार्थ के बीच में अपने साथियों से कहने लगे कि इस दुष्ट (स्वामीजी) का मुँह देखना पाप है। सब लोगों को चाहिये कि यहाँ से उठ चलें।

ऐसा सुनकर स्वामीजी बोले—यदि मेरे मुँह देखने में पाप है तो पीठ फेरकर बैठ जाइये पर शास्त्रार्थ करते चलिये।

(६)

एक बार श्री स्वामीजी के एक नौकर ने कहा कि आप कहते हैं कि 'राम राम' बार-बार कहने से कुछ लाभ नहीं। ऐसा कहने से

क्यों लाभ नहीं। श्री स्वामीजी ने उस समय कुछ उत्तर न दिया। थोड़ी देर के बाद उसका नाम लेकर पुकारा। किन्तु कुछ और न कहा। कुछ देर के पश्चात् फिर उसका नाम लिया और चुप रहे।

श्री स्वामीजी ने कई बार ऐसा ही किया और कुछ न कहा। इस पर नौकर ने कहा कि महाराज आप पुकारते हैं और कुछ नहीं कहते। श्री स्वामीजी ने कहा—जिस प्रकार तुम्हारा नाम लिया और कुछ नहीं कहा तो नाम लेना व्यर्थ हुआ, उसी प्रकार यदि किसी का केवल नाम लिया जाय और कुछ न कहा जाय तो नाम लेना निरर्थक होता है।

(७)

एक नाई को स्वामीजी महाराज के प्रति बड़ी भक्ति थी। वह भोजन ले आया। स्वामीजी खाने लगे। कई ब्राह्मण महाराज भी वहाँ बैठे थे। उन्होंने ऐसा देखकर स्वामीजी से कहा—महाराज! आप क्या अनर्थ कर रहे हैं। नाई की रोटी खा रहे हैं।

स्वामीजी ने उत्तर दिया—यह रोटी तो गेहूँ की है। नाई की तो नहीं है।

(८)

एक दिन श्री स्वामीजी महाराज एक थाली में भोजन कर रहे थे। इतने में एक पौराणिक संन्यासीजी वहाँ पधारे। वह स्वामीजी को देखकर कहने लगे—महाराज धातु का स्पर्श संन्यासियों के लिये वर्जित है। आप थाली में क्यों रोटी खा रहे हैं?

संन्यासी महोदय का सर मुँडा हुआ था। अतः भोजन के पश्चात् स्वामीजी संन्यासी के सर पर हाथ फेरने लगे और फिर हँसकर बोले—यह सर तो सम्भवतः जूते से साफ कराया गया होगा क्योंकि संन्यासियों को धातु का स्पर्श पाप है।

(९)

एक स्थान में दो मुसलमान सज्जन स्वामीजी के पास पहुँचे और कहने लगे—हमने सुना है कि आप मुसलमानों को आर्य बना सकते हैं।

स्वामीजी—अच्छे मार्ग पर चलने वाले को आर्य कहते हैं। यदि आप उत्तम उत्तम कार्य करने लगेंगे तो आप भी आर्य बन जायेंगे।

दोनों मुसलमान—यदि हम आर्य बन जावें तो क्या आप हमारे साथ भोजन करेंगे ?

स्वामीजी—आर्य धर्म के अनुसार किसी को किसी का जूँठा नहीं खाना चाहिये। हाँ एक ही साथ (एक ही बर्तन में नहीं बल्कि पृथक्-पृथक् बर्तनों में) खाना दोष नहीं है।

दोनों मुसलमान—जूँठा खाने से तो प्रेम बढ़ता है।

स्वामीजी—यह बात ठीक नहीं है। यदि इस प्रकार से प्रेम बढ़ता है तो कुत्ते जो एक संग खाते हैं वह एक साथ ही खाने वाले परस्पर क्यों लड़ पड़ते हैं।

(१०)

कोई व्यक्ति श्री स्वामीजी को 'बाबाजी' कहा करता था। श्री स्वामीजी ने कहा कि बाबाजी मुझे न कहा करो। पूछा गया कि इसमें क्या बात है ? श्री स्वामीजी ने उत्तर दिया कि इसके अर्थ हैं—घोड़ा नहीं तो खच्चर।

क्योंकि 'वा (विकल्पे) वाजी—अश्व वा अश्वतर'।

(११)

सुप्रसिद्ध मुसलमान सर सैयद अहमद खाँ साहब को कौन नहीं जानता। एक बार आप ने श्री स्वामीजी महाराज से कहा—यह बात समझ में नहीं आती कि थोड़े से हवन से वायु का सुधार कैसे होता है ? महाराज ने कहा—दाल को थोड़ी-सी ही चीज़ से बघारा (छूँका) जाता है। वह सुगंधित हो जाती है और उसकी सुगंध दूर तक पहुँचती है। इसी प्रकार थोड़े से हवन से वायु में सुगंध फैलती है।

(१२)

श्री स्वामीजी अपने शरीर पर गङ्गारज लगाया करते थे। किसी ने प्रश्न किया—स्वामीजी आप शरीर पर गङ्गारज क्यों लगाते हैं ? स्वामीजी ने उत्तर में कहा—गङ्गारज लगाने से मच्छरों के काटने का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा करता।

(१३)

एक पण्डितजी तिलक व भस्म लगाने के बड़े भक्त थे। उन्होंने स्वामीजी से कहा कि जो लोग तिलक व भस्मादि से अपने मस्तक

को पवित्र नहीं किया करते वह स्वर्ग में स्थान नहीं पावेंगे।

श्री स्वामीजी महाराज ने हँसकर कहा—यदि तुम सारे मुँह पर कालिख लगा लो तो सम्भवत: सब से ऊँचा स्थान तुम को ही स्वर्ग में मिल सकेगा।

(१४)

एक बार किसी पण्डितजी ने स्वामीजी से पूछा महाराज! पत्थर में परमात्मा है कि नहीं?

स्वामीजी—पत्थर में परमात्मा अवश्य है।

पण्डितजी—फिर तो उसके पूजने में कोई दोष न होना चाहिए।

स्वामीजी—घड़ियाल में ईश्वर है?

पण्डितजी—अवश्य है।

ऐसा उत्तर पाकर स्वामीजी महाराज ने कहा—तुम कैसी बुद्धि के मनुष्य हो। दो-चार तोले की मूर्ति को सर झुकाते हो। तुम उसकी पूजा करते हो। पर चार पाँच सेर भारी घड़ियाल को लकड़ी से पीटते हो।

(१५)

एक बार श्री स्वामीजी महाराज गङ्गा के किनार इस ढंग से लेटे थे कि शरीर का कुछ भाग जल में था और कुछ जल से बाहर पृथिवी में था। इतने में एक मगरमच्छ उधर दिखाई पड़ा। लोगों ने शोर किया और श्री स्वामीजी से (वहाँ से) हटने के लिए प्रार्थना की।

श्री स्वामीजी ने कहा—कोई हर्ज नहीं है। मैं उसे नहीं छेड़ूँगा। वह मुझे कष्ट नहीं देगा। अन्त में वह मगरमच्छ वहाँ से चुप-चाप चला गया।

(१६)

श्री स्वामीजी बनारस में थे। उनके पास एक विद्यार्थी था, वह सनातनी विचार का था। विश्वनाथ महादेव का बड़ा उपासक था। सायंकाल के समय रोज़ विश्वनाथजी के दर्शन के निमित्त जाया करता था।

एक दिन स्वामीजी ने उससे पूछा सायंकाल सन्ध्या समय तू कहाँ चला जाया करता है। विद्यार्थी ने उत्तर दिया—मैं विश्वनाथजी

के दर्शन के लिए चला जाया करता हूँ। इस अवसर पर कई व्यक्ति उपस्थित थे उन्होंने समझा कि स्वामीजी विद्यार्थी को निकाल देंगे। किन्तु स्वामीजी ने केवल इतना ही कहा—क्या किया जाय, पाषाण पूजते पूजते इस विद्यार्थी की बुद्धि ही पत्थर की हो गई है।

(१७)

एक बार मेरा[1] छोटा भाई जयराम एक बेर के पेड़ से फल तोड़ रहा था। स्वामीजी ने मुझे बुलाकर कहा—शिवराम देख तेरा भाई बेरों को स्वामी की आज्ञा बिना तोड़ रहा है।

इस पर मैंने कुछ उत्तर न दिया। इसके पश्चात् स्वामीजी ने मेरे भाई को बुलाया और उससे पूछा—तू बेर के स्वामी (मालिक) की आज्ञा के बिना क्यों बेर तोड़ रहा था?

उसने उत्तर दिया—महाराज हमने तोड़ा तो कौन-सा पाप किया। सभी लोग तोड़ते हैं। इस पर स्वामीजी ने कहा—यदि सब लोग चोरी करेंगे तो क्या तू भी चोरी करेगा?

(१८)

एक व्यक्ति शिवजी पर बेल-पत्र चढ़ाने जा रहा था। स्वामीजी ने उससे कहा—आप शिव की मूर्ति पर चढ़ाने जा रहे हैं वह इसे नहीं खायेगा। हाँ, इसको किसी पशु के सामने डाल दो तो इसके द्वारा उसकी कुछ भूख अवश्य शान्त हो जाएगी।

(१९)

कहते हैं कि दिल्ली के एक मुसलमान सज्जन ने स्वामीजी से कहा—आप मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं। यह बहुत अच्छी बात है। यह काम इस्लाम के अनुकूल है।

स्वामीजी—मूर्तिपूजा जिसे हिन्दू लोग करते हैं मैं केवल उसका ही खण्डन नहीं करता हूँ बल्कि मैं सब जातों की मूर्तिपूजा का खण्डन किया करता हूँ। हिन्दुओं की मूर्तियाँ डील-डौल में चार अंगुल से लेकर कई हाथ ही होती हैं। इनको हटाया जा सकेगा। परन्तु मुसलमानों की मूर्तियाँ तीन मंजले मकानों से अधिक ऊँची हैं। प्रश्न यह है कि वह कैसे हट सकेगी।

---

१. प्रयाग के स्वर्गीय पण्डित शिवरामजी का कथन है। (लेखक)

(२०)

फर्रुखाबाद की घटना है कि स्वामीजी महाराज बहुत से लोगों को यज्ञोपवीत दे रहे थे। उन दिनों में शुक्र देवता (ग्रह) अस्त थे। एक पण्डितजी ने स्वामीजी से कहा—महाराज! आजकल शुक्र अस्त हैं। इस कारण यज्ञोपवीत कराना निषिद्ध है।

स्वामीजी बोले—हमारा शुक्र अस्त नहीं हुआ है। हम तो अवश्य करायेंगे।

(२१)

कुछ मनुष्यों ने सोचा कि स्वामीजी सब को मुँह तोड़ उत्तर दिया करते हैं। अतः कोई बात ऐसी पूछनी चाहिए कि स्वामीजी से उत्तर ही न बन पड़े। इस कारण यह निश्चय किया गया कि स्वामीजी से पूछा जाय कि आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी? यदि कहा—ज्ञानी हूँ तो कहा जावेगा कि आप अभिमानी हैं। यदि अज्ञानी होना स्वीकार किया तो कहा जावेगा जब आप स्वयं अज्ञानी हैं तो दूसरों को क्या ज्ञान दे सकते हैं?

निदान ऐसा सोच-बिचार कर कुछ लोग स्वामीजी के पास पहुँचे और पूछ बैठे—महाराज आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी?

स्वामीजी—मैं कुछ बातों का ज्ञानी हूँ जैसे वेद, शास्त्र आदि विषयों में ज्ञानी हूँ। पर अरबी, फारसी व अंग्रेजी आदि भाषाओं में अज्ञानी हूँ।

ऐसा उत्तर पाकर लोग चुप ही हो गये।

(२२)

एक बार एक पादरी साहब ने श्री स्वामीजी से कहा कि जिस प्रकार महारानी विक्टोरिया[१] बिना अपने प्रतिनिधि वायसराय के भारत का शासन नहीं कर सकतीं उसी प्रकार परमेश्वर प्रभु ईसा मसीह के बिना मनुष्यों पर धार्मिक शासन व मुक्ति का प्रबन्ध नहीं कर सकता।

श्री स्वामीजी ने उत्तर में कहा कि उदाहरण ठीक नहीं है। महारानी विक्टोरिया एक देशी और अल्पज्ञ हैं। उनकी तुलना ईश्वर से नहीं हो सकती। परमेश्वर सर्वव्यापक और सर्वशक्तिवान है। उसे

---

१. उस समय के भारत का शासन महारानी विक्टोरिया के हाथ में था।

किसी की सहायता न चाहिए। यदि वह भी माना जावे कि ईसा एक महात्मा पुरुष थे तथापि यह नहीं हो सकता कि परमेश्वर उनकी सिफारिश से अन्याय करे और पापी को पाप का फल न दें। वह न्यायकारी है जो जैसा कर्म करेगा उसे वैसा फल अवश्य देगा।

(२३)

एक पादरी साहब ने श्री स्वामीजी से कहा कि देखिये—

ईसाई धर्म कैसा अच्छा है। प्रभु मसीह सब का पाप स्वयं अपने ऊपर लेकर चले गये।

श्री स्वामीजी ने उत्तर में कहा—पाप का प्रायश्चित् उसका फल भोगे बिना नहीं हो सकता। यह बात झूठी है कि ईसा सब का पाप अपने ऊपर लेकर चले गये। यह बात तो पापों की पोषक और आश्रयदाता है। लोग यह जानकर कि ईसा पर विश्वास लाने से ही उनके सब पाप दूर हो जाएँगे, लोग पाप करने में अधिक प्रवृत्त होंगे।

(२४)

श्री स्वामीजी से अनेक अवसरों पर कुछ लोगों ने कहा कि एक ही साथ एक बर्तन में खाने से प्रेम बढ़ता है किन्तु श्री स्वामीजी ने इस बात को बुरा बतलाया क्योंकि ऐसा होने से कुछ बीमारियाँ एक से दूसरे को लग जाती हैं। इसके सिवा यह भी कहा कि यह बात ठीक नहीं कि एक साथ खाने से प्रेम बढ़ता है। यदि ऐसा होता तो मुसलमान आपस में क्यों विरोध रखते क्योंकि वह लोग एक दूसरे का जूँठा खाते हैं।

(२५)

श्री स्वामीजी के विरोधी कभी-कभी विचित्र लीला रचा करते थे। एक कवि महाशय ने एक लीला में एक आर्य को सूचक और श्री स्वामीजी उत्तरदाता को महर्षि के रूप में इस प्रकार वर्णन किया है—

आर्य—तुम्हें बदनाम वह भगवन् सरे बाज़ार[१] करते हैं।
महर्षि—मुझे मशहूर करते हैं बहुत उपकार करते हैं॥
आर्य—चढ़ा कर एक गधे पर आदमी, मुँह कर दिया काला।
पुकारें नाम से भगवन् के, अत्याचार करते हैं॥

१. खुल्लम-खुल्ला, सब के सामने।

महर्षि—मुनव्वर[१] चाँद-सा[२] मुखड़ा तो है असली दयानन्द का।
वह मसनूई[३] दयानन्दों की मट्टी ख़्वार[४] करते हैं॥
आर्य—उठा पत्थर वह मारें रूसियह[५] पर, और कहते हैं।
यह देखो किस तरह स्वामी का हम उपकार करते हैं॥
महर्षि—यही पत्थर था उनका इष्ट जो वह फेंकते हैं अब।
वह गोया[६] इस तरह से इष्ट का तिरस्कार करते हैं॥
आर्य—वह देते सैकड़ों ही गालियाँ हैं शोक भगवन् को।
वह दुर्वचनों की भगवत नाम पर बौछार करते हैं॥
महर्षि—जो दुर्वचनों का होगा खात्मा[७] शुभ वचन सीखेंगे।
उन्हें हम आप शिक्षा के लिये तैयार करते हैं॥
आर्य—तुम्हें वह नीच जाति से बताकर तालियाँ पीटें।
तुम्हारी जाति से नफ़रत[८] का वह इज़हार[९] करते हैं॥
महर्षि—मैं ब्राह्मण जन्म ही से था मुझे वह नीच कहते हैं।
जन्म से नीच हैं सारे वह खुद प्रचार करते हैं॥
आर्य—तुम्हारे ज़ोर की शक्ति का वह ख़ाका[१०] उड़ाते हैं।
वह देकर सांड से तश्बीह[११] वह धिक्कार करते हैं॥
महर्षि—हरि का शुक्र[१२] है सारे मेरी शक्ति के हैं क़ायल[१३]।
जता ब्रह्मचर्य की अज़मत[१४], जगत उपकार करते हैं॥
आर्य—ज़बान[१५] को आपकी नश्तर कहें छोटे बड़े भगवन्।
बड़े ही क्रोध से वह लानतो[१६] फटकार करते हैं॥
महर्षि—जो कहते हैं बुरा है डाक्टर नश्तर[१७] चुभोने पर।
वह उसकी दयालुता का बाद में इकरार[१८] करते हैं॥
आर्य—ग़रज़[१९] भगवन् की निन्दा मूढ़ हर प्रकार करते हैं।
महर्षि—यह उनकी है दया वह दास का उद्धार करते हैं॥

---

१. रोशन, चमकता हुआ। २. चन्द्रमा के समान। ३. बनावटी, नक़ली। ४. अपमान। ५. काला मुँह। ६. मानो, इस प्रकार। ७. अन्त। ८. घृणा। ९. वर्णन, प्रगट। १० हँसी। ११. उपमा, समानता। १२. धन्यवाद। १३. मानने वाले। १४. बड़ाई। १५. जिह्वा, जीभ। १६. धिक्कार। १७. घाव चोरने की नोंकदार चीज़। १८. स्वीकार। १९. फलतः।

दूसरा खण्ड

भूमिका

सत्यार्थप्रकाश का पहला संस्करण सन् १८७५ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसमें केवल बारह समुल्लास थे। ईसाइयों से सम्बन्ध रखने वाला तेरहवाँ और मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाला चौदहवाँ समुल्लास उसमें नहीं था। परन्तु इस संस्करण के दसवें समुल्लास के अन्त में जो कुछ लिखा है उससे ज्ञात होता है कि श्री स्वामीजी ने ईसाई व मुसलमान मतों के विषय में लिखने का ख्याल उस समय अथवा उससे पूर्व ही किया था।

सत्यार्थप्रकाश के दूसरे संस्करण तथा इसके आधार वाले अन्य संस्करणों की जो भूमिका है उसमें भाद्रपद शुक्ल पक्ष सम्वत् १९३९ वि०[1] अंकित है। इससे स्पष्ट है कि इस संस्करण की सामग्री इस समय तैयार हो गई थी, परन्तु इसके प्रकाशित होने की नौबत (श्री स्वामीजी की मृत्यु के पश्चात्) सन् १८८४ ई० में आई थी। इसकी भूमिका के प्रारम्भिक शब्दों से विदित होता है कि उक्त दोनों समुल्लास प्रथम संस्करण में किसी कारण न छप सके थे क्योंकि श्री स्वामीजी ने लिखा है—

"अन्त्य के दो समुल्लास.........किसी कारण नहीं छप सके थे अब वे भी छपवा दिये हैं।"

श्री स्वामीजी की मुठभेड़ ईसाई व मुसलमानों के साथ सन् १८७५ ई० से बहुत पहले ही हो चुकी थी। उनके कार्यकाल में ईसाई व मुसलमान जो कुछ कर रहे थे और हिन्दुओं पर इनका जैसा प्रभाव था उनसे वह भली-भाँति सचेत थे। दोनों धर्म के लोग ज़ोरों के साथ हिन्दुओं पर अपना सिक्का जमा रहे थे। यही मूल कारण था कि

---

१. अर्थात् सितम्बर १९८२ ई०।

उन्होंने सत्यार्थप्रकाश द्वारा परिचित कराना अत्यावश्यक समझा था।[१] फलतः दोनों धर्मों के विषय में जो कुछ थोड़ा-सा उन्होंने लिखा था उस पर मैंने कुछ प्रकाश डालने का उद्योग किया है ताकि पाठक उक्त दोनों समुल्लासों से अधिक लाभ उठा सकें।

१. क्योंकि श्री स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश के बनाने के विषय में इसकी भूमिका में लिखा है—

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत होता है इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें। पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

प्रथम अध्याय

स्वामी दयानन्द और बाइबिल

सत्यार्थप्रकाश के त्रयोदश (तेरहवें) समुल्लास में श्री स्वामी दयानन्दजी ने बाइबिल के विषय में जो कुछ लिखा है उससे पहले ही अनुभूमिका में यह कहा है—

''इस पुस्तक के भाषान्तर बहुत हुये हैं जो कि इनके मत में बड़े-बड़े पादरी हैं उन्होंने किये हैं उनमें से देवनागरी वा संस्कृत भाषान्तर देखकर मुझको बाइबिल में बहुत-सी शंका हुई है उनमें से कुछ थोड़ी-सी इस १३ (तेरहवें) समुल्लास में सबके विचारार्थ लिखी है।''

सबसे पहले अब यह जान लेना चाहिये कि श्री स्वामीजी महाराज के उक्त कथन में देवनागरी व संस्कृत के जिन भाषान्तरों का उल्लेख है निस्सन्देह उनसे उन भाषान्तरों को ही समझना चाहिये जो कि प्रोटेस्टेण्ट ईसाइयों द्वारा हुये हैं और जिनका प्रकाशन भी प्रोटेस्टेण्ट ईसाइयों की ही किसी संस्था द्वारा हुआ है।

हाँ, मैं अपने उक्त कथन के पक्ष में यह कह देना भी चाहता हूँ कि जो ईसाई रोमन कैथोलिक कहे जाते हैं और जिनकी ओर से भी भारत में बहुत-सा काम हो रहा है उनके द्वारा बाइबिल का कोई भी भाषान्तर हिन्दी या संस्कृत में नहीं हुआ और इसके सिवा यह भी स्पष्ट है कि तेरहवें समुल्लास में बाइबिल के जो उद्धरण हैं वह उस देवनागरी बाइबिल से मिलते हैं जो कि प्रोटेस्टेण्ट ईसाइयों द्वारा अनुवादित है।

श्री स्वामीजी ने संस्कृत बाइबिल[1] को अवश्य देखा किन्तु मूल सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में ही लिखा इस कारण तेरहवें समुल्लास में प्रोटेस्टेण्ड ईसाइयों द्वारा प्रकाशित हिन्दी बाइबिल के उद्धरण दिये।

---

१. संस्कृत में बाइबिल सन् १८२२ ई० में ही हो गई थी। लेखक

निदान इन बातों पर ध्यान पाठकों को भली–भाँति रखना चाहिये।

प्रोटेस्टेण्ट ईसाई सम्पूर्ण बाइबिल में कुछ ६६ ग्रन्थ मानते हैं। जिनमें से निम्नलिखित केवल १४ ग्रन्थों पर श्री स्वामीजी की ओर से १३० समीक्षाएँ हैं—

(१) उत्पत्ति
(२) यात्रा (निर्गमन)
(३) लयव्यवस्था
(४) गिन्ती (गणना)
(५) समुएल की दूसरी पुस्तक
(६) राजाओं की दूसरी पुस्तक
(७) काल समाचार की पहली पुस्तक
(८) ऐयुब की पुस्तक
(९) उपदेश की पुस्तक
(१०) मत्ती रचित इञ्जील
(११) मार्क रचित इञ्जील
(१२) लूक रचित इञ्जील
(१३) योहन रचित सुसमाचार (इञ्जील)
(१४) योहन के प्रकाशित वाक्य

बाइबिल के दो प्रधान खण्ड हैं। एक पुराना नियम (Old Testament) दूसरा नया नियम (New Testament) अस्तु जो उक्त पहले नौ ग्रन्थ हैं वह पुराने नियम के हैं और बाक़ी पाँच ग्रन्थ नये नियम के हैं।

अब यह ध्यान रहे कि सत्यार्थप्रकाश के जो उद्धरण हैं वह प्रत्येक हिन्दी बाइबिल में नहीं मिलते। उदाहरणार्थ, जानना चाहिए कि तेरहवें समुल्लास के आरम्भ में 'उत्पत्ति' (तौरेत) के आरम्भ से दो आयतों के यह शब्द उद्धृत हैं—

"आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा और पृथिवी बैडौल और सूनी थी। और गहिराव पर अन्धियारा था और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था॥ पर्व १। आयत १। २॥"

किन्तु ब्रिटिश ऐण्ड फारेन बाइबिल सोसाइटी इलाहाबाद द्वारा

सन् १९१३ ई० में प्रकाशित 'उत्पत्ति' के आरम्भ में उक्त दो आयतों के शब्द यह हैं—

"आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथिवी को सिरजा। और पृथिवी सूनी और सुनसान पड़ी थी और गहिरे जल के ऊपर अन्धियारा था और परमेश्वर का आत्मा जल के ऊपर मण्डलाता था।"

इलाहाबाद से ही 'धर्मशास्त्र का पुरानी वाचा नाम' के नाम से सन् १९०५ ई० की जो पुस्तक प्रकाशित है उसके आरम्भ में उत्पत्ति की दो आयतों के शब्द इस प्रकार हैं—

"आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथिवी को सिरजा, और पृथिवी यों ही सुनसान पड़ी थी और गहरे जल के ऊपर अन्धियारा था और परमेश्वर का आत्मा जल के ऊपर-ऊपर मण्डलाता था।"

कलकत्ता चर्च मिशन छापाखाना की छपी हुई सन् १८३४ ई० की 'उत्पत्ति' में उक्त भाव इन शब्दों में हैं—

"आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी को सृजा। और पृथ्वी बेडौल और सूनी थी और गहराव के ऊपर अन्धियारा था और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था।"

मत्ती रचित इञ्जील "नये नियम" में पहली पोथी है। तेरहवें समुल्लास में समीक्षा ६० इसके विषय में है और इस इञ्जील के आयत १८ पर्व १ के यह शब्द सत्यार्थप्रकाश में मिलते हैं—

"यीशु ख्रीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ। उसकी माता मरियम की यूसुफ से मंगनी हुई थी पर उनके इकट्ठा होने के पहले ही वह देख पड़ी की पवित्र आत्मा से गर्भवती है।"

किन्तु 'नया नियम' जो इलाहाबाद से सन् १९३६ ई० का प्रकाशित है उसमें मत्ती रचित इञ्जील के पहले पर्व में आयत १८ के शब्द यह हैं—

"यीशु मसीह का जन्म इस प्रकार से हुआ। जब उसकी माता मरियम की मंगनी यूसुफ से हुई तो उनके इकट्ठे होने से पहले पवित्र आत्मा की ओर से गर्भवती पाई गई।"

बैपटिस्ट मिशन प्रेस कलकत्ता से सन् १८६४ ई० का जो 'नया नियम' प्रकाशित है उसमें उक्त आशय के शब्द यह हैं—

"यीशु ख्रीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ उसकी माता मरियम

की यूसुफ से मंगनी हुई थी इसके इकट्ठे होने के पहले वह देख पड़ी कि पवित्र आत्मा से गर्भवती है।''

परन्तु उक्त प्रेस से ही प्रकाशित 'नया नियम' सन् १८४८ ई० में उक्त शब्द इस प्रकार मिलते हैं—

''यीशु ख्रीष्ट के जन्म की बात यही है। उसकी माता मरियम युसुफ से बचनदत्त हुई, दोनों के इकट्ठे होने के पहले मरियम पवित्र आत्मा से गर्भवती पाई गई।''

अब प्रश्न यह उठता है कि पाठ भेद क्यों हैं ? एक कारण कुछ अंश तक यह है कि बाइबिल के अनेक खण्डों के अनुवाद कई प्रकार की हिन्दी—अवधी, बघेली, ब्रजभाषा, छत्तीसगढ़ी, दक्खिनी और कन्नौजी में हुए हैं किन्तु मूल बात यह है कि हिन्दी अनुवादों का समय-समय पर संशोधन हुआ। इस विषय में छानबीन करने से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ—

'नया नियम' या 'पुराना नियम' अथवा पूर्ण बाइबिल के जो हिन्दी संस्करण सन् १८७४ ई० और सन् १८९९ ई० अथवा इन सालों के बीच के है उनका पाठ सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें समुल्लास के उद्धृत पाठों से मिलता है।

अतः लोगों को चाहिए कि उक्त काल की छपी हुई हिन्दी बाइबिल अथवा 'नया व पुराना नियम' सम्भालकर रक्खें ताकि आवश्यकता पड़ने पर यह साबित कर सकें कि सत्यार्थप्रकाश के जो उद्धरण हैं वह ठीक हैं।

इस विषय पर थोड़ा-सा प्रकाश पहले ही डाला जा चुका है कि ईसाई लोग अपने धर्म के निमित्त श्री स्वामीजी के कार्य-काल अथवा उससे कुछ पूर्व क्या कर रहे थे। कितने लोग ईसाइयों के चंगुल में फँस रहे थे। यही कारण है कि सत्यार्थप्रकाश का तेरहवाँ समुल्लास ईसाइयों के विषय में है और इसको मुसलमानों के विषय वाले चौदहवें समुल्लास से पहले शायद इसी कारण रखा गया है कि ईसाइयों के काम या प्रभाव की महत्ता मुसलमानों की अपेक्षा अधिक थी।

द्वितीय अध्याय

चौदहवाँ समुल्लास

समस्त मुसलमानों की दृष्टि में परम माननीय धर्म ग्रन्थ 'कुरान' है जिसे 'कुरान शरीफ', 'कुरान मजीद' या 'कलामुल्लाह' आदि भी कहा जाता है। यही मूल कारण है कि श्री स्वामी दयानन्द महाराज ने सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास में केवल इसी ग्रन्थ की बाबत कुछ लिखा है। अत: जो कुछ उन्होंने लिखा है उसी के विषय में कुछ बातें बतलाई जा रही हैं।

चौदहवें समुल्लास के आरम्भ में जो पहली समीक्षा है उसके हवाले के निमित्त 'मंज़िल', 'सिपारा' व 'सूरत' शब्द का प्रयोग है। 'आयत' शब्द का प्रयोग वहाँ नहीं है क्योंकि इस शब्द की वहाँ आवश्यकता न थी। इस समीक्षा के पश्चात् संकेत के रूप में प्रत्येक शब्द के प्रथम अक्षर दिये गये हैं। मैं इस सम्बन्ध में पाठकों को पहले कुछ बतला देना आवश्यक समझता हूँ।

(१) कुरान जिन ढङ्गों पर विभक्त किया गया है उनमें से एक ढंग मंज़िल के अनुसार है। कुल सात मंज़िलें समस्त कुरान में मानी गई हैं ताकि जो लोग कुरान का पाठ सात दिन में समाप्त करना चाहें उनके निमित्त एक चिह्न रहे कि अमुक स्थान तक प्रतिदिन पढ़ना चाहिये। मंज़िल शब्द का अर्थ है—उतरने का स्थान, ठहरने का पड़ाव। यह शब्द अरबी भाषा का है। इसके निमित्त 'मंडल' शब्द प्रयोग किया जा सकता है।

(२) 'पारा' शब्द फारसी का है। इसी के निमित्त 'सिपारा' शब्द भी बोला जाता है। पारा का अर्थ है—टुकड़ा। इस रीति से सम्पूर्ण कुरान ३० भागों में है ताकि जो लोग समस्त कुरान को एक मास अर्थात् तीस दिनों में समाप्त करना चाहें उनके निमित्त प्रतिदिन का खण्ड स्पष्ट रहे।

(३) सूरत या सूर: के विचार से कुरान में ११४ खण्ड हैं किन्तु

कोई सूरत बड़ी है और कोई छोटी। सूरत बकर में ढाई पारे आ जाते हैं और अन्तिम पारे में अनेक सूरत हैं। सूरत का अर्थ—श्रेष्ठता भी है। यह अरबी भाषा का शब्द है।

(४) आयत का अर्थ है—चिह्न। मंज़िल व सूरत के समान यह भी अरबी भाषा का शब्द है। आयत भी कोई छोटी है कोई बड़ी। हिन्दी में इसके लिये वाक्य या अंश प्रयोग किया जाय तो अनुचित नहीं। हाँ, यह भी स्पष्ट रहे कि आयतों की गणना केवल सूरत (सूरः) की ही दृष्टि में रखकर की जाती है क्योंकि सूरत का पद मंज़िल व पारः से श्रेष्ठ माना जाता है।

मैंने मिस्र देश (Egypt) के छपे हुये कुरानों का एक ऐसा संस्करण लिया जिसमें प्रत्येक आयत की संख्या पृथक्-पृथक् अंकित है। इसके साथ ही एक ऐसा ही भारतीय संस्करण लिया। दोनों में आयतों की संख्या का अंक एक-सा ही मिला। परन्तु मैंने देखा कि चौदहवें समुल्लास की अनेक समीक्षाओं में जो आशय अनेक आयतों के दिये गये हैं उन आशयों या अर्थों वाली आयतों की संख्या जो कुछ वहाँ बतलाई गई है वह संख्या उन आयतों के निमित्त मिस्री व भारतीय संस्करणों में नहीं मिलती। उदाहरणार्थ, जानना चाहिये कि समीक्षा १३ में आयत का अंक ४६ अंकित है किन्तु भारतीय व मिस्री दोनों संस्करणों के अनुसार आयत का अंक ४८ ठहरता है। इसी प्रकार अनेक समीक्षाओं की आयतों के अंकों में कुछ न कुछ भेद अवश्य है।

चौदहवाँ समुल्लास पहले पहल सत्यार्थप्रकाश के दूसरे संस्करण (सन् १८८४ ई०) में छपा है। इस संस्करण के आरम्भ व तीसरे संस्करण के आरम्भ में यह सूचना[१] (प्रेस के प्रबन्धकर्ता की ओर से) छपी हुई मिलती है—

''चौदहवें समुल्लास में जो कुरान की मंज़िल, सिपारा सूरत और आयत का व्योरा लिखा है उसमें और तो सब ठीक है परन्तु आयतों की संख्या में दो चार के आगे पीछे का अन्तर होना सम्भव

१. सम्भव है कि उक्त संस्करणों के सिवा किसी अन्य में भी छपी हों किन्तु मेरी दृष्टि में केवल यही दो पुराने संस्करण आये हैं। अनेक संस्करणों में इस सूचना का अभाव अवश्य है। लेखक

है अतएव पाठकगण क्षमा करें।''

इससे प्रगट होता है कि आयतों की संख्या विषयक अशुद्धि का अनुभव कुछ न कुछ अवश्य हुआ था।

ऐसी अशुद्धि क्यों हुई थी। वास्तविक बात यह है कि बीसवीं शताब्दी में जो कुरान छप रहे हैं उनमें से अनेक में (सब में नहीं) प्रत्येक आयत की संख्या उस आयत के साथ ही लिख दी गई है। इससे पहले अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के छपे हुये कुरानों में शायद ही कोई ऐसा संस्करण हो जिस में प्रत्येक आयत की संख्या साथ-साथ दिखलाई गई हो। अस्तु। चौदहवें समुल्लास की समीक्षाओं में आयतों की जो संख्या दी गई वह वर्त्तमान काल के अनेक संस्करणों की संख्या से भिन्न ठहरती है। इसका एक कारण यह प्रतीत होता है कि आयतों की संख्या निश्चित करने में कहीं-कहीं 'बिस्मिल्ला हिर् रहिमानिर् रहीम' को एक आयत समझ लिया गया है अथवा ऐसा न समझा गया होगा।

दूसरी बात यह स्पष्ट रहे कि श्री स्वामीजी स्वयं अरबी नहीं जानते थे। उन्होंने कुरान के विषय में जो कुछ किया है वह सब दूसरे लोगों की सहायता से किया है। फलतः जिस अथवा जिनके द्वारा कुरान के आयतों की संख्या उनको मालूम हुई है उस अथवा उनसे आयत की संख्या निश्चित करने अथवा बतलाने में भूल हुई है। यही कारण है कि अनेक संख्याएँ समीक्षाओं में ऐसी हैं कि वह ठीक-ठीक नहीं उतर रही हैं।

इसी सम्बन्ध में यह भी जान लेना चाहिए कि कहीं-कहीं समीक्षाओं में आयत का कोई-कोई अंक छूट गया है। जैसा कि समीक्षा १४ में। वास्तव में तीन संख्याओं का होना आवश्यक है। परन्तु एक ही नहीं बल्कि सत्यार्थप्रकाश के अनेक हिन्दी संस्करणों को भी मैंने देखा है। सभों में आयत सम्बन्धी केवल ५० व ६१ अंक हैं। इन अंकों के अनुसार ६२ का अंक होना भी आवश्यक था।

कुरान में कुल ११४ सूरतें (भाग) हैं। इनमें से ६२ सूरतों की आयतों (अंशों) पर श्री स्वामीजी की ओर से १५९ समीक्षाएँ हैं। परन्तु प्रत्येक समीक्षा के अन्तर्गत एक ही आयत नहीं है बल्कि किसी-किसी समीक्षा में कई आयतें एकत्र हैं। उदाहरणार्थ, जानना चाहिए कि समीक्षा नम्बर २ में दो आयतें एक साथ की हैं और नम्बर

३ में तीन आयतें एक साथ की हैं। परन्तु एक साथ के सिवा दूर की आयतें भी एक ही नम्बर में पड़ गई हैं। क्योंकि समीक्षा नम्बर १४ में सूरत बकर की आयत[१] ५३ और ६५ का खण्ड व ६६ (पूरी) एकत्र हैं।

हाँ, यह भी ध्यान रहे कि समीक्षा नम्बर २२ व २३ की आयतें वास्तव में समीक्षा १४ की एकत्र आयतों के बीच में ५८ व ६० नम्बर की आयतें क्रमानुसार हैं। उन्हीं के खण्ड २२ व २३ नम्बर की समीक्षाएँ हैं। अतः फिर बतला देता हूँ कि जिन समीक्षाओं में एक से अधिक आयतें हैं उनमें—

(क) पूरी-पूरी आयतें एक साथ की ही हैं या—

(ख) पूरी आयत व किसी एक आयत तथा अनेक आयतों के खण्ड एक साथ हैं। और किसी समीक्षा में ऐसा एकत्र होना कहीं-कहीं तो निकट की आयतों का है और कहीं-कहीं दूर-दूर की आयतों का है। यही कारण है कि किसी-किसी समीक्षा में जो अर्थ व भाव हैं वह एक ही क्रम में नहीं हैं। भाव असंगत हैं। उदाहरणार्थ, जानना चाहिये कि समीक्षा नम्बर १४ के शब्द हिन्दी सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास में यह हैं—

"हमने मूसा को किताब और मोजिज़े दिये। हमने उनको कहा कि तुम निन्दित बन्दर हो जाओ। यह एक भय दिया जो उनके सामने और पीछे थे उनको और शिक्षा ईमानदारों को॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० ५०। ६१॥"

इसमें वास्तव में सूरत वक़र की आयत नम्बर ५३ व नम्बर ६५ के अंश और नम्बर ६६ की पूरी आयत का भाव है जो इस रूप में हैं—

(१) हमने मूसा को किताब और मोजिज़े दिये। (आयत ५३ का खण्ड)

(२) हमने उनको कहा कि तुम निन्दित बन्दर हो जाओ। (आयत ६५ का खण्ड)

---

१. ५३, ६५ और ६६ की संख्याएँ वास्तव में मिस्री व भारतीय संस्करणों के अनुसार हैं। समीक्षा में इन के बदले केवल ५० व ६१ अंक है। एक छूटा हुआ है जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है।

(३) यह एक भय दिया जो उनके सामने और पीछे थे उनको और शिक्षा ईमानदारों को। (आयत ६६ पूरी)

निदान जो लोग चौदहवें समुल्लास से लाभ उठाना चाहें उनको काफी सावधानी से काम लेना चाहिये।

'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' इस नाम से जो पुस्तकें चार भागों में निकली हैं उनके द्वितीय भाग में दीनापुर के बाबू माधोलालजी के नाम जो पत्र हैं उनमें से एक पत्र २४ अप्रैल सन् १८७९ ई० का श्री स्वामीजी की ओर से अंग्रेजी में है। उसी में है—

The "Koran" in Nagri is entirely ready but has not been printed yet.

अर्थ—कुरान नागरी में पूरा तैयार है परन्तु अभी तक छापा नहीं गया।[१]

उक्त शब्दों से यह प्रगट होता है कि सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास में कुरान की बाबत जो कुछ श्री स्वामीजी महाराज ने लिखा है उसे सन् १८७९ ई० के आस-पास में अथवा इस समय के कुछ ही समय बाद लिखा है। यही मूल कारण है कि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में कुरान की बाबत कुछ नहीं छप सका था।

श्री स्वामीजी महाराज ने जो कुछ चौदहवें समुल्लास में लिखा उसमें कुरान की ही बाबत क्यों लिखा? कारण यह है कि यही एक ऐसा धर्म ग्रन्थ है कि जिसको सब मुसलमान मानते हैं। अस्तु सत्यार्थ-प्रकाश की भूमिका में लिखा है—

"चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत विषय में लिखा है। ये लोग कुरान को अपने मत का मूल पुस्तक मानते हैं।"

इसके सिवा चौदहवें समुल्लास की अनुभूमिका में है—"जो यह चौदहवाँ समुल्लास मुसलमानों के मत विषय में लिखा है सो

१. मुझे पता लगा है कि अजमेर में जहाँ श्री स्वामीजी की पुस्तकें सुरक्षित हैं वहाँ हिन्दी कुरान की एक हस्तलिखित प्रति भी है।[MM] अनुमान कहता है कि वह प्रति वही है जिसका उल्लेख पत्र में ऊपर किया गया है। ज्ञात रहे कि अब तो हिन्दी में कई व्यक्तियों द्वारा पूर्ण कुरान हो गये हैं किन्तु इससे पूर्व पूर्ण या अपूर्ण कुरान हिन्दी में कोई न था। उर्दू में पूर्ण कुरान केवल दो ही थे।

केवल कुरान के अभिप्राय से, अन्य ग्रन्थ के मत से नहीं क्योंकि मुसलमान कुरान पर ही पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं, यद्यपि फ़िरक़े होने के कारण किसी शब्द, अर्थ आदि के विषय में विरुद्ध बात है तथापि कुरान पर सब एक मत है।''

अब यह ज्ञात रहे कि कुरान की आयतों (अंशों) का जो अर्थ चौदहवें समुल्लास में दिया गया है वह अर्थ आजकल के अनेक अनुवादकों के अर्थों से कहीं-कहीं भिन्न है। मूल कारण यह है कि आज समय बदला हुआ है। अनेक अर्थ काल को दृष्टि में रखकर किये गये हैं ताकि शंकाएं न उत्पन्न हों।

बीसवीं शताब्दी ई० में कुरान के जो अनुवाद उर्दू में हुये हैं उनकी भाषा में अरबी व फ़ारसी के शब्द अधिक हैं किन्तु जो अनुवाद उन्नीसवीं शताब्दी के हैं उनकी भाषा सरल है। यहाँ पर उन उर्दू अनुवादों[१] का परिचय कराना आवश्यक समझता हूँ जो कि श्री स्वामीजी के उक्त हिन्दी कुरान से पहिले हुये हैं और उस समय में प्रचलित थे। उनकी भाषा श्री स्वामीजी द्वारा लिखित अर्थों से बहुत कुछ मिलती जुलती है। ऐसे अनुवादों से प्रगट हो जाएगा कि अनुवाद की जो शैली बीसवीं शताब्दी के पहले की और जो अर्थ का भाव किसी आयत का उन अनुवादों में माना गया है उसी के अनुकूल श्री स्वामीजी द्वारा लिखित अर्थ चौदहवें समुल्लास में भी हैं। यदि समय के बदलने पर कुरान का अर्थ अब दूसरे ढङ्ग पर हो और वह श्री स्वामीजी द्वारा लिखित अर्थों से अथवा उनके पूर्व के अर्थों से न मिले तो आश्चर्य की कोई बात नहीं। समय की गति और उसकी दशा विचित्र हुआ करती है।

(१) मौलाना शाह रफ़ीउद्दीन साहब

मौलाना शाह वलीउल्ला के यह दूसरे पुत्र थे। पिता ने कुरान का अनुवाद फारसी में किया था। उन्होंने उर्दू में किया है।

यह सन् ११६३ हिजरी (सन् १७४९ या १७५० ई०) में पैदा

---

१. इन उर्दू अनुवादों की उर्दू और साधारण हिन्दी में बहुत ज्यादा अन्तर आज बीसवीं शताब्दी की उर्दू व हिन्दी के समान नहीं है। अस्तु। इस बात का पता आगे चलकर लग जाएगा। लेखक

हुये थे। देहान्त सन् १२३३ हिजरी अर्थात् सन् १८१७ या १८१८ ई० में हुआ था। इनका अनुवाद यद्यपि काफी समय पूर्व का हो चुका है तथापि अनेक उर्दू अनुवादों की उपस्थिति में भी आज बीसवीं शताब्दी में काफी छपता तथा बिकता है।

मोजिज़ नुमा मुतवस्सित कुरान शरीफ मुतरजम बदो तरजमः के नाम से मूल कुरान दो अर्थों व टीका सहित आकार १०×६/१–२ इंच नूरमुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब क़रीब जामा मस्जिद दिल्ली की ओर से सन् १३४५ हिजरी (सन् १९२७ ई०) में प्रकाशित हुआ है। इसमें मूल के नीचे प्रथम अर्थ (अनुवाद) मौलाना शाह रफीउद्दीन का है और दूसरा मौलाना अशरफ अली साहब का है। फलतः इसी संस्करण के शब्द आगे चलकर उद्धृत किये जायेंगे और इसी के पृष्ठ का उल्लेख किया जाएगा।

(२) मौलाना शाह अब्दुल क़ादिर साहब

मौलाना शाह रफीउद्दीन साहब के यह सगे छोटे भाई थे। सन् ११६७ हिजरी (सन् १७५३ या १७५४ ई०) में पैदा हुये थे। देहान्त का समय ९ रजब सन् १२४३ हिजरी[१] अर्थात् सन् १८२८ ई० है। इन के द्वारा जो उर्दू अनुवाद हुआ है वह भी आज काफी खपता है।

ग्यारहवीं बार मुंशी नवलकिशोर के प्रेस लखनऊ से सन् दिसम्बर १९२६ ई० में एक कुरान १२×८ इंच के आकार में छपा है। उसके किनारे–किनारे मौलाना का किया हुआ अनुवाद छपा है। इसी संस्करण के शब्द आगे चलकर उद्धृत किये जाएंगे और इसी संस्करण के पृष्ठ का उल्लेख किया जाएगा।

ध्यान रहे

१. उक्त अनुवादों के जो अन्य संस्करण मिलते हैं उनसे भी यदि कोई व्यक्ति आयतों के उन अर्थों का मुकाबिला करे जो कि सत्यार्थप्रकाश में दिये गये हैं तो कोई हर्ज नहीं।

२. उक्त दोनों अनुवादों के सिवा कुछ अपूर्ण अनुवाद व भाष्य उर्दू में सन् १८७९ ई० तक और हुये थे। यदि उनसे लाभ उठाया गया होगा तो बहुत कम। वास्तव में उक्त दोनों से ही लाभ उठाया गया है

१. कहीं–कहीं सन् १२३० हिजरी लिखा हुआ है।

जैसा कि आगे चलकर ज्ञात होगा कि इनसे ही सत्यार्थप्रकाश के शब्द व भाव बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं।

श्री स्वामीजी महाराज स्वयं अरबी न जानते थे। कुरान हिन्दी में अन्य लोगों के कारण हुआ था और तब उन्होंने उसके सहारे चौदहवें समुल्लास को लिखा। इसी कारण उन्होंने उक्त समुल्लास की अनुभूमिका में कहा है—

"जो कुरान अर्बी भाषा में है उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्य भाषान्तर करा के पश्चात् अर्बी के बड़े-बड़े विद्वानों से शुद्ध करवा के लिखा गया है। यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उसको उचित है कि मौलवी साहबों के तर्जुमों का पहले खण्डन करे पश्चात् इस विषय पर लिखे।"

सन् १८७९ ई० के पहले मौलाना शाह रफीउद्दीन साहब व मौलाना शाह अब्दुल कादिर साहब के द्वारा ही सम्पूर्ण कुरान के अनुवाद (अर्थ) उर्दू में हुये हैं। इन्हीं की ओर संकेत लागू होता है। इन दोनों महाशयों का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। अब नमूने के रूप में यह दिखलाया जाएगा कि किसी आयत अर्थात् अंश (आयत) का जो अर्थ चौदहवें समुल्लास में दिया गया है वह अर्थ उक्त दोनों महाशयों से कितना मिलता-जुलता है। नमूने के रूप में ५ समीक्षाओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

(१)

सं० १—आरम्भ साथ नाम अल्लाह के क्षमा करने वाला दयालु। मं० १। सि० १। सू० १।

(क) शुरू करता हूँ मैं साथ नाम अल्लाह बखशिश करने वाले मेहरबान के। (मौलाना शाह रफ़ीउद्दीन साहब-पृष्ठ २)

(ख) शुरू अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान निहायत रहम वाला। (मौलाना शाह क़ादिर साहब-पृष्ठ २)

ध्यान रहे कि दोनों मौलानाओं के जिन संस्करणों का उल्लेख पहले किया गया है उन्हीं के पृष्ठों का अंक दिया गया है। परन्तु मं०, सि०, आदि के अनुसार जो पता आयत का दिया गया है उसके द्वारा अन्य संस्करणों से भी मिलान किया जा सकता है और अन्य लोगों

के अनुवाद भी देखे जा सकते हैं।

(२)

सं० [१]५—अल्लाह ने उनके दिलों, कानों पर मोहर कर दी और उनकी आँखों पर पर्दा है और उनके वास्ते बड़ा अज़ाब है।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ६।[२]

(क) मोहर की अल्लाह ने ऊपर दिलों उनके के और ऊपर कानों उनके के और ऊपर उनकी आँख के पर्दा है और वास्ते उनके अज़ाब है बड़ा। (मौ० शाह रफीउद्दीन साहब–पृष्ठ ४)

(ख) मोहर करदी अल्लाह ने उनके दिल पर और उनके कान पर और उनकी आँखों पर है पर्दा और उनको बड़ी मार है।

(मौ० शा० अब्दुल क़ादिर साहब–पृष्ठ ४)

(३)

१०९—क्या नहीं देखा तूने यह कि भेजा हमने शैतानों का ऊपर काफिरों के बहकाते हैं उनको बहकाने कर।

मं० ४। सि० १६। सू० १९। आ० ८१

(क) क्या नहीं देखा तूने यह कि भेजा हमने शैतानों को ऊपर काफिरों के बिदकाते हैं उनको बिदकाना कर।

(मौ० शा० रफीउद्दीन साहब–पृ० ४४०)

(ख) तूने नहीं देखा कि हमने छोड़ रक्खे हैं शैतान मुनकिरों पर उछालते हैं उनको उभार कर।

(मौ० शा० अब्दुल कादिर साहब–पृ० ३१२)

(४)

सं० [३]१२६—कहा कि कभी न लाभ देगा भागना तुझको जो भागो तुम मृत्यु या क़तल से। मं० ५। सि० २१। सू० ३३। आ० १६

(क) कहा कि हरगिज़ न फायदा देगा तुमको भागना अगर भागो तुम मौत से या कतल से।

(मो० शा० रफीउद्दीन साहब–पृ० ५९२)

---

१. समीक्षा ५ का केवल अन्तिम अंश लिखा गया है।

२. आयत की संख्या में कहीं-कहीं भेद है। इसकी बाबत लिखा जा चुका है।

३. १२६ का केवल पहला अंश दिया गया है।

(ख) तू कह कि काम न आवेगा तुमको भागना अगर भागोगे मरने से मारे जाने से। (मौ० शा० अब्दुल कादिर साहब-पृ० ४२१)

(५)

सं० १५५—निश्चय वे मकर करते हैं एक मकर॥ और मैं भी मकर करता हूँ एक मकर॥

मं० ७। सि० ३०। सूरत ८६। आ० १५, १६

(क) तहकीक़ वह मकर करते हैं एक मकर और मैं भी मकर करता हूँ एक मकर। (मौ० शा० रपीउद्दीन साहब-पृ० ८३१)

(ख) अलबत्त: वह लगे हैं एक दाव करने में और मैं लगा हूँ एक दाव करने में। (मौ० शा० अब्दुल कादिर साहब-पृ० ५९६)

हाँ, यह भी बतला देना उचित समझता हूँ कि कहीं-कहीं शब्द इधर-उधर गड़बड़ छपे हैं। उदाहरणार्थ, जानना चाहिए—

(१) अंक ८ के अन्त में यह शब्द सत्यार्थप्रकाश के समस्त संस्करणों में हैं—

उस आग से डरो कि जिस का इंधन मनुष्य है और काफिरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं।

इस इबारत में पत्थर शब्द के ठीक स्थान पर न होने से क्रिया भी बदल गई है। वास्तव में उक्त इबारत इस प्रकार होनी चाहिए—

उस आग से डरो कि जिस का इंधन मनुष्य है और पत्थर काफिरों के वास्ते तैयार की गई है।

(२) अंक ११ में है—

"बाबा आदम को दण्डवत करो देखा सभों ने—इत्यादि उक्त इबारत में 'देखा' होना चाहिए।"

अब यह भी स्पष्ट रहे कि चौदहवें समुल्लास के अन्तिम भाग में कुछ अन्य बातें भी मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाली हैं उनसे भी हमारी जानकारी में अच्छा लाभ हो सकता है।

परिशिष्ट (१)

कुछ तिथियाँ

सम्वत् १८८१ वि० (सन् १८२४ ई०) को श्री स्वामीजी महाराज का जन्म हुआ।

सम्वत् १८९४ वि० माघ बदी १४ (शिवरात्रि) [सन् १९३८ ई०] को मूर्ति-पूजा के प्रति अश्रद्धा हुआ।

सम्वत् १८९६ वि० में छोटी बहिन का देहान्त हुआ।

सम्वत् १८९९ वि० में चाचा की मृत्यु हुई।

सम्वत् १९०१ वि० में घर छोड़ा। सम्वत् १९०३ वि० में अन्तिम बार घर छोड़ा। संन्यास ग्रहण करके 'दयानन्द' नाम धारण किया।

सम्वत् १९१७ वि० में श्री स्वामी विरजानन्दजी की सेवा में मथुरा पहुँचे।

सम्वत् १९२० वि० वैशाख मास (अप्रैल सन् १८६३ ई०) से प्रचार कार्य आरम्भ किया।

सम्वत् १९२३ वि० फाल्गुन शुक्ल १ को हरिद्वार के कुम्भ-मेले पर पहुँचे और फिर 'पाखण्ड-खण्डनी पताका' गाड़ी।

सम्वत् १९२६ वि० कार्तिक सुदी १२ मंगल (१६ नवम्बर सन् १८६९ ई०) को काशी का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ 'प्रतिमा पूजा विचार' पर हुआ।

सम्वत् १९२९ वि० पौष बदी २ (१६ दिसम्बर सन् १८७२ ई०) को कलकत्ता पहुँचे।

फाल्गुन बदी १० (२३ फरवरी सन् १८७३) के व्याख्यान का अनुवाद कलकत्ता में जनता के सम्मुख अनुवादक ने अशुद्ध पेश किया।

सम्वत् १९३० वि० चैत सुदी एकादशी (८ अप्रैल सन् १८७३ ई०) को पण्डित ताराचरण के साथ हुगली में शास्त्रार्थ हुआ।

सम्वत् १९३० वि० पौष कृष्ण २ शनिवार (६ दिसम्बर सन् १८७३ ई०) को काशी में एक संस्कृत पाठशाला खोली गई थी।

सम्वत् १९३१ वि० के ज्येष्ठ (अर्थात् सन् १८७४ ई० में मई मास) की किसी तारीख को हिन्दी में सब से पहिला व्याख्यान काशी में दिया था।

कार्तिक बदी १५ अर्थात् अमावस्या (९ नवम्बर सन् १८७४ ई०) मंगल को 'वेदविरुद्ध मत खण्डन' की रचना (संस्कृत में) समाप्त हुई।

पौष बदी एकादशी (३ जनवरी सन् १८७५ ई०) रविवार को 'शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण' की रचना (संस्कृत में) समाप्त हुई।

सम्वत् १९३२ वि० चैत्र शुक्ल १ बुधवार (७ अप्रैल सन् १८७५ ई०) को बम्बई में आर्यसमाज सब से पहले स्थापित हुआ[NN] और आर्यसमाज के नियम बने जो संख्या व विस्तार में दस से अधिक थे।

कार्तिक बदी ३० अर्थात् अमावस्या (३० अक्टूबर सन् १८७५ ई०) शनिवार को 'संस्कारविधि' प्रथम संस्करण का लिखा जाना आरम्भ हुआ था।

भादों सुदी प्रतिपदा (२० अगस्त सन् १८७६ ई०) रविवार को 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' का कार्य आरम्भ हुआ।

इस सम्वत् के अन्तिम अर्थात् सन् १८७७ ई० के प्रारम्भिक काल में 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' की छपाई आरम्भ हुई।

सम्वत् १९३४ वि० ज्येष्ठ (अधिक) शुक्ल १३ रविवार (२४ जून सन् १८७७ ई०) को लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना हुई और आर्यसमाज के प्रचलित दस नियम इसी अवसर पर बने।

श्रावण सुदी सप्तमी (१५ अगस्त सन् १८७७ ई०) बुधवार को 'आर्योद्देश्य रत्नमाला' की रचना समाप्त हुई।

कार्तिक शुक्ल २ (७ नवम्बर १८७७ ई०) बुधवार को 'भ्रान्तिनिवारण' की रचना समाप्त हुई।

भौमवार मार्ग शुक्ल ६ सम्वत् १९३४ वि० (११ दिसम्बर सन् १८७७ ई०) को 'ऋग्वेद भाष्य' का कार्य आरम्भ हुआ।

पौष सुदी १३ (१७ जनवरी सन् १८७८ ई०) गुरुवार को 'यजुर्वेद भाष्य' का कार्य आरम्भ हुआ।

सम्वत् १९३५ वि० में 'ऋग्वेद व यजुर्वेद भाष्य' की छपाई आरम्भ हुई।सम्वत् १९३६ वि० माघ शुक्ल २ बृहस्पतिवार (अर्थात् १२ फरवरी सन् १८८० ई०) को काशी में वैदिक यन्त्रालय स्थापित हुआ था जो कि बाद को सन् १८८१ ई० में प्रयाग और फिर सन् १८९१ ई० में अजमेर में पहुँचा जहाँ कि अब भी है।

शनिवार माघ सुदी ४ (१४ फरवरी सन् १८८० ई०) को 'वर्णोच्चारण शिक्षा' (वेदाङ्ग प्रकाश का प्रथम अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

'संस्कृत वाक्य प्रबोध' (वेदाङ्ग प्रकाश का द्वितीय अङ्ग) रचा गया।

शुक्रवार फाल्गुन सुदी १५ (२६ मार्च १८८० ई०) को 'व्यवहार-भानु' (वेदाङ्गप्रकाश के तीसरे अङ्ग) की रचना हुई।

सम्वत् १९३७ वि० ज्येष्ठ बदी २ (२७ मई सन् १८८० ई०) बृहस्पतिवार को 'भ्रमोच्छेदन' की रचना समाप्त हुई।

भाद्र सुदी ८ (१२ सितम्बर सन् १८८० ई०) रविवार को यजुर्वेद के सातवें अध्याय के मन्त्रों का भाष्य किया जा रहा था।

फाल्गुन बदी १० (२४ फरवरी सन् १८८१ ई०) गुरुवार को 'गोकरुणानिधि' की रचना समाप्त हुई।

'सन्धि विषय' (वेदाङ्ग प्रकाश के चौथे अङ्ग) की रचना हुई।

सम्वत् १९३८ वि० चैत सुदी १४ बुधवार (१३ अप्रैल १८८१ ई०) को 'नामिक' (वेदाङ्ग प्रकाश के पाँचवें अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

बुधवार भाद्र बदी ८ (१७ अगस्त १८८१ ई०) को 'कारकीय' (वेदाङ्ग प्रकाश के छठे अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

रविवार भाद्र शुक्ल १२ (५ सितम्बर १८८१ ई०) को 'सामासिक' (वेदाङ्ग प्रकाश के सातवें अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

शनिवार अगहन शुक्ल ५ (२६ नवम्बर १८८१ ई०) को 'स्त्रैणताद्धित' (वेदाङ्ग प्रकाश के आठवें अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

'अव्ययार्थ' (वेदाङ्ग प्रकाश के नवें अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

सम्वत् १९३९ वि० में 'आख्यातिक' (वेदाङ्ग प्रकाश के दसवें अङ्ग) की रचना हुई।

चन्द्रवार भाद्रशुक्ल १३ (२५ सितम्बर सन् १८८२ ई०) को 'सौवर' (वेदाङ्ग प्रकाश के ग्यारहवें अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

आश्विन शुक्ल (अक्टूबर सन् १८८२ ई०) में 'पारिभाषिक' (वेदाङ्ग प्रकाश का बारहवाँ अङ्ग) रचा गया।

शनिवार अगहन सुदी १ (२६ नवम्बर सन् १८८२ ई०) को 'यजुर्वेद भाष्य' की रचना समाप्त हुई।

गुरुवार अगहन शुक्ल ४ (१४ दिसम्बर सन् १८८२ ई०) को 'निघण्टु' (वेदाङ्ग प्रकाश का सोलहवाँ अङ्ग) संशोधित होकर सम्पादित हुआ।

गुरुवार पौष बदी १० (३ जनवरी १८८३ ई०) को 'धातुपाठ' (वेदाङ्ग प्रकाश के तेरहवें अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

बुधवार माघ बदी १ (२४ जनवरी सन् १८८३ ई०) को 'उणादि कोष' (वेदाङ्ग प्रकाश का पन्द्रहवाँ अङ्ग) तैयार हुआ।

शुक्रवार माघ शुक्ल १० (१६ फरवरी सन् १८८३ ई०) को 'गणपाठ' (वेदाङ्ग प्रकाश का चौदहवाँ अङ्ग) तैयार हुआ।

सम्वत् १९३९ वि० फाल्गुन कृष्ण ५ मंगलवार (२७ फरवरी सन् १८८३ ई०) को उदयपुर में 'स्वीकार पत्र' लिखा गया अर्थात् 'परोपकारिणी सभा' की स्थापना हुई।

सम्वत् १९४० वि० आषाढ़ बदी १३ (१ जुलाई सन् १८८३ ई०) रविवार को 'संस्कारविधि' के दूसरे अर्थात् संशोधित संस्करण के तैयार करने के लिये विचार हुआ।

आश्विन बदी १३ (२९ सितम्बर सन् १८८३ ई०) को (अन्तिम बार (जोधपुर में रात के समय विष दिया गया।

दीपावली (कार्तिक की अमावस्या) मंगलवार ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० को ६ बजे के लगभग सायंकाल के समय अजमेर में स्वर्ग लोक को सिधारे।

परिशिष्ट (२)

कुछ अन्य बातें

१. श्री स्वामीजी महाराज लगभग ३९ वर्ष की आयु तक (ब्रह्मचर्य के साथ) केवल संस्कृत विद्या की प्राप्ति में लगे रहे। तब उनकी तृप्ति (विद्या के निमित्त) हुई। कौन नहीं जानता कि इतनी आयु के भीतर ही बहुत से लोग बहुत कुछ हो जाना चाहते हैं।

२. उन्होंने केवल संस्कृत पढ़कर जो काम कर दिखाया वह अति प्रशंसनीय है।

३. संस्कृत को वह बहुत आगे बढ़ाना चाहते थे और उनके द्वारा हिन्दी में भी बहुत कार्य हुआ है।

४. वेदों का जितना मान उनके हृदय में था वह भी कुछ कम प्रशंसनीय नहीं है।

५. उनकी कई रचनाएँ प्रश्न व उत्तर के रूप में हैं ताकि लोगों को समझने में सुगमता हो और उनके पढ़ने में खूब जी लग सके।

६. मनुष्य मात्र के सिवा वह पशुओं पर भी अच्छे दयालु थे।

७. जब उन्होंने प्रचार कार्य आरम्भ किया तो पहले कई वर्ष अनुभव और तैयारी में व्यतीत हुये।

८. प्रचार-कार्य आरम्भ करने के पश्चात् बहुत भ्रमण किया। किन्तु जब श्री स्वामी विरजानन्दजी महाराज की सेवा में मथुरा पहुँचे थे तो उसके पूर्व भी बहुत भ्रमण किया था। निदान उनके जीवन के लगभग ३५ वर्ष भ्रमण में ही व्यतीत हुये थे।

९. उनके समय में समाचारपत्र बहुत ज्यादा न थे[00] तथापि उनकी धूम थोड़े ही काल में बहुत ज्यादा मच गई, यहाँ तक कि विदेशों में भी उनकी अक्षय कीर्ति फैली।

१०. महाराजजी व्याख्यान के पश्चात् शंका समाधान का अवसर बहुधा दिया करते थे। यदि समय काफ़ी न रहता था अथवा जो लोग

सर्वसाधारण के सन्मुख अपनी जिज्ञासा दूर करना पसन्द न करते थे वह लोग उनके ठहरने के स्थान पर पहुँचा करते थे और अपनी तृष्णा शान्त करते थे।

११. इसी पुस्तक में बतलाया जा चुका है कि श्री स्वामीजी द्वारा कुल लिखित सामग्री लगभग पन्द्रह हजार पृष्ठों की ठहरती है। अतः भली-भाँति यह ज्ञात रहे कि उन पृष्ठों में से दो हजार से अधिक पृष्ठ खण्डनात्मक नहीं ठहरते।

१२. अपने उद्देश्य की पूर्ति में श्री स्वामीजी महाराज को अनेक लोगों से बड़ी सहायता मिली थी किन्तु अनेक लोगों की ओर से उनको नाना प्रकार के कष्ट भी पहुँचे थे।

श्रीमद्दयानन्द-भ्रमण

१. इसमें उन स्थानों का वर्णन है जो श्री स्वामीजी महाराज द्वारा गौरवान्वित हुये हैं। बतलाया गया है कि प्रत्येक ऐसा स्थान कहाँ है और किसी मुख्य स्थान से किस ओर तथा कितनी दूरी पर है।

२. किसी स्थान में एक (या अनेक) बार कब पधारे।

३. कब कहाँ से प्रस्थान किया।

४. इस प्रकार के स्थानों में यदि रेल-मार्ग चालू हुआ तो कब।

५. जिन स्थानों के नाम अनेक जीवन-चरितों में अशुद्ध छपे हैं उनको ठीक-ठीक लिखा गया है।

६. इसमें एक ऐसा नक्शा भी रहेगा जिससे महर्षि के पदारोपित स्थानों का ज्ञान बहुत ही सुगमता के साथ जल्द हो सकेगा।

निदान अपने ढंग की अनोखी पुस्तक है। यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित होगी। महर्षि दयानन्द सरस्वती के लेखक ही इस अपूर्व पुस्तक के कर्त्ता धर्त्ता हैं।

१५-११-१९४१

मैनेजर आलिम फ़ाज़िल बुकडिपो

मुहतशिम गंज, इलाहाबाद सिटी

Printed by Vishwa Prakash at the Kala Press, Allahabad.

पादटिप्पणियाँ

A. प्राचीन पुस्तकों, पत्र, पत्रिकाओं तथा पुरातन सन्दर्भों में स्वामी दयानन्द का जन्म वर्ष सर्वत्र १८२४ ई० (१८८१ वि०) बताया गया है। किन्तु विगत कुछ वर्षों से सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने जो जन्मतिथि घोषित की है उसके अनुसार जन्म का वर्ष १८२५ ई० ठहरता है।

B. मास्टर रामचन्द्र वसु एक बंगाली थे जिन्होंने १८५२ ई० में ईसाई मत ग्रहण किया। ये दिल्ली कॉलेज में गणित पढ़ाते थे।

C. इस शिक्षा कमीशन के अध्यक्ष डॉ० हण्टर थे। स्वामीजी की प्रेरणा से अनेक आर्यसमाजों ने इस कमीशन को अपने प्रतिवेदन भेजकर निवेदन किया कि विद्यालयों में पढ़ाई का माध्यम मातृभाषा को रखा जाये तथा सरकारी कामकाज में नागरी लिपि में लिखी हिन्दी का प्रचलन हो।

विशेष द्रष्टव्य—ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापनों के परिशिष्ट-४ (१९५८ में प्रकाशित)।

D. मौलवी मोहम्मद कासिम से स्वामीजी का शास्त्रार्थ चांदापुर (जिला शाहजहाँपुर) में कबीरपंथी बाबू प्यारेलाल द्वारा आयोज़ित धर्म मेले में १९, २० मार्च १८७७ को हुआ था। स्वामीजी से इनका विस्तृत पत्र व्यवहार भी हुआ था। द्रष्टव्य—मेला चाँदापुर तथा पत्र व्यवहार।

E. कलकत्ता से लौटने के बाद स्वामीजी ने हिन्दी में प्रथम भाषण काशी में दिया था। पुराने अभ्यास वश इस वक्तृता में वे अनेक संस्कृत वाक्य बोल गये।

F. अष्टाध्यायी भाष्य (अपूर्ण) का लेखन काल तो १९३५-३६ वि० है किन्तु इसका दो भागों में प्रकाशन १९२७ ई० तथा १९४० ई० में हो सका।

G. भागवत की यह कथा १०८ पण्डितों ने की, जिनमें प्रमुख थे—गोविन्द बाबा, हरि बाबा, त्र्यम्बक बाबा, धौली बाबा तथा बुधकर बाबा।

H. पुस्तक का नाम भागवत खण्डन (पाखण्ड खण्डन) है। यह प्रथम बार लाइट प्रेस काशी से १८७० में छपी थी। इसका परिष्कृत संस्करण गोविन्दराम हासानन्द ने डॉ० भारतीय द्वारा सम्पादित कराकर १९९९ ई० में प्रकाशित किया है।

I. 'अ' इस ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद महर्षि के प्रसिद्ध शिष्य पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा ने किया था।

J. १८७५ ई० के संस्करण में १३वें तथा १४वें समुल्लास के न छपने के दो कारण बताये गये हैं—प्रथम तो शीघ्रता में छपने के कारण यह सामग्री प्रेस में नहीं दी गई। एक अन्य कारण यह भी बताया गया है कि अंग्रेजी राज्य की सेवा में डिप्टी कलेक्टर के पद पर नियुक्त तथा उसी सरकार से राजा एवं सी० एस० आई० जैसी उपाधि प्राप्त जयकृष्णदास (जो सत्यार्थप्रकाश के प्रकाशक थे) नहीं चाहते थे कि इस ग्रन्थ में ईसाइमत तथा इस्लाम की आलोचना वाली सामग्री छपे।

K. प्रत्येक मण्डल तथा अध्याय के अन्त की पुष्पिका इस प्रकार लिखी गई है—"इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्याणां श्रीमन्महाविदुषां विरजानन्द सरस्वती स्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामिना विरचिते संस्कृतार्यभाषा विभूषिते सुप्रमाण युक्ते (ऋग्वेद भाष्ये अथवा यजुर्वेद भाष्ये) मण्डलं अथवा अध्यायः समाप्तिमगात्।"

L. संस्कारविधि के प्रथम संस्करण में प्रत्येक संस्कार की विधि के आधारभूत गृह्यसूत्रों के अंश विस्तारपूर्वक उद्धृत किये गये हैं तथा संस्कारों में विनियुक्त शतशः मन्त्रों के विशद अर्थ भी दिये गये हैं।

M. प्रकृत वेदभाष्य से पूर्व काशी के लाजरस प्रेस में सं० १९३४ वि० में जब वेदभाष्य भूमिका छपने लगी तो धारावाही मासिक प्रकाशन के एक अंक का मूल्य छः आने और वार्षिक मूल्य (१२ अंकों) का साढ़े चार रुपये रखा गया था।

N. फर्रुखाबाद के रा०ब० दुर्गाप्रसाद आदि भक्तजनों ने वेदभाष्य की सहायता के लिए पर्याप्त द्रव्य प्रदान किया था।

O. ऋषिकृत वेदभाष्य (संस्कृत) का हिन्दी भाषार्थ पं० भीमसेन शर्मा तथा पं० ज्वालादत्त शर्मा ने स्वामीजी के निधन के पर्याप्त बाद तक किया था।

P. मेरे संग्रह में ९ मन्त्रों के भाष्य का जो संस्करण है वह २००० वि० में प्रकाशित तृतीय संस्करण है। इसका मूल्य (५७ वर्ष पूर्व) मात्र २ आने था।

Q. भ्रान्तिनिवारण का रचनाकाल १८७७ ई० (१९३४ वि०) है। इसका प्रथम संस्करण शाहजहाँपुर से लीथो (मुद्रण शैली) में प्रकाशित हुआ था। यह दुलर्भ प्रति मेरे संग्रह में विद्यमान है।

R. वेदांगप्रकाश के लेखकों (या सहायकों) में पं० भीमसेन, पं० ज्वालादत्त तथा पं० दिनेशराम के नाम आते हैं। अधिकांश अशुद्धियाँ इन्हीं पण्डितों की असावधानियों के कारण हुई है।

S. ऋषि दयानन्द ने गोकरुणानिधि का अंग्रेजी अनुवाद करने के लिए रा०ब० मूलराज को प्रेरित किया था। इस विषय में उन्होंने मूलराज को अनेक पत्र (३ मार्च १८८१, २३ मई १८८१ तथा ९ दिसम्बर १८८१) लिखे। प्रतीत होता है कि इस व्यक्ति ने अनुवाद करना स्वीकार भी किया किन्तु अन्ततः

किया नहीं। इस पर शोक प्रकट करते हुए स्वामीजी ने २९ अप्रैल १८८२ के अपने पत्र में मूलराज को लिख दिया कि अब आप इस कार्य को न करें। मैं इसका अनुवाद मुम्बई में करा लूँगा। तथ्य यह है कि रा०ब० मूलाज मांसाहार के समर्थक थे इसलिए उन्होंने गौ जैसे उपयोगी पशु की रक्षा में लिखी पुस्तक का अनुवाद करना भी उचित नहीं समझा।

T. अष्टाध्यायी के अवशिष्ट भाष्य को प्रकाशित कराने का यत्न परोपकारिणी सभा ने किया है।

U. आर्यसमाज की स्थापना के समय जो २८ नियम निर्धारित किये गये उनमें संस्था के सिद्धान्तों और मन्तव्यों के अतिरिक्त समाज संचालन में उपयोगी संविधान की धाराएँ भी थीं। बाद में स्वामीजी के लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना के अनन्तर सिद्धान्त विषयक नियमों एवं उद्देश्यों को पृथकशः सूत्रबद्ध किया तथा समाज की व्यवस्था एवं कार्यपद्धति के निर्देशक तत्त्व उपनियम शीर्षक से बनाये गये।

V. प्रतिमापूजन विचार (हुगली शास्त्रार्थ) का प्रथम संस्करण १८८८ ई० में क्षत्रिय पत्रिका के सम्पादक महाराज कुमार बाबू रामदीनसिंह ने 'हिन्दी भाषा के प्रेमी तथा रसिक जनों के मनोविलास के लिए' खड्ग विलास प्रेस बांकीपुर पटना से प्रकाशित किया था। इसे भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र द्वारा 'संगृहीत' बताया गया है। वस्तुतः शास्त्रार्थ का आलेख स्वयं ऋषि दयानन्द ने ही तैयार किया था जैसा कि ग्रन्थान्त की पुष्पिका से विदित होता है—

दयाया आनन्दो विलसति परःस्वात्म विदित
सरस्वत्यस्यान्ते निवसतिमुदा सत्य वचना।
तदाख्यातिर्यस्य प्रकटितगुणाराष्ट्रि शरणा
स को दान्तः शान्तोविदित विदितोवेद्य विदितः॥
श्री दयानन्द सरस्वती स्वामिना विरचितमिदमति विज्ञेयम्।

W. १९२५ ई० में जब स्वामी दयानन्द की जन्म शताब्दी मनाई गई थी उस समय सत्यार्थप्रकाश सम्भवतः चार आने में विक्रयार्थ उपलब्ध था। इसे गोविन्दराम हासानन्द कलकत्ता ने १९२४ में प्रकाशित किया था।

X. संस्कार चन्द्रिका का लेखन मास्टर आत्माराम अमृतसरी तथा पं० भीमसेन शर्मा (आगरा) ने संयुक्त रूप से किया था जब कि संस्कारप्रकाश रामगोपाल विद्यालंकार लिखित है। सत्यार्थप्रकाश के प्रथम दो समुल्लासों पर भाष्य रचना लाहौर के पं० वाचस्पति एम० ए० ने की थी। इसे रामलाल कपूर ट्रस्ट ने प्रकाशित किया था।

Y. 'अ' यह जानकारी (सामग्री) मेरे द्वारा सम्पादित दयानन्द साहित्य सर्वस्व (पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ की दयानन्द पीठ द्वारा १९८३ में प्रकाशित) में दी गई है।

Z. ऋषि दयानन्द के समग्र उपलब्ध पत्र व्यवहार (स्वामीजी द्वारा लिखे गये तथा उनको लिखे गये) को चार खण्डों में पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने सम्पादित कर प्रकाशित किया है।

AA ठाकुर नन्दकिशोरसिंह (१८५६-१९३४ जयपुर राज्य की कौंसिल के सदस्य तथा न्याय मन्त्री थे। यत्र पत्र मुम्बई से जयपुर भेजा गया था।

BB भारत के युवकों को कला कौशल की शिक्षा लेने के लिये जर्मनी भेजने से सम्बन्धित स्वामीजी का पत्र व्यवहार जर्मनी के एक शिक्षा शास्त्री मि० वाइज से हुआ था। इन जर्मन सज्जन द्वारा स्वामीजी को लिखे अंग्रेजी पत्रों का अनुवाद मैंने किया है जो वेदवाणी (दयानन्द अंक) में प्रकाशित हुआ है।

CC यहाँ फारसी के मतलब उर्दू (फारसी) लिपि में लिखे गये हिसाब से है। तब तक हिसाब की बहियों में भी उर्दू का ही प्रयोग होता था।

DD. मित्र विलास सनातन धर्म का पक्षपाती साप्ताहिक था जिसका प्रकाशन पं० मुकुन्दराम नामक एक काश्मीरी ब्राह्मण ने १८७७ में लाहौर से किया था। स्वामी दयानन्द की आलोचना करने में यह पत्र बढ़-चढ़कर भाग लेता था।

EE. The Arya-इस अंग्रेजी मासिक का सम्पादन रतनचंद बेरी करते थे। १ मार्च १८८२ से यह लाहौर से छपने लगा। १८८५ तक निकलता रहा।

FF. शुद्ध नाम-शाहजहाँपुर, यहाँ से आर्यदर्पण नामक पत्र मुन्शी बख्तावरसिंह ने १८७८ में निकाला। यही सज्जन वहाँ की आर्यसमाज के मन्त्री भी थे।

GG सभा ने अभी तक ऐसे अप्रकाशित पत्रों की छानबीन नहीं की है। यदि अद्यतन अप्रकाशित पत्र सभा के संग्रह में हों तो उन्हें तुरन्त प्रकाशित किया जाना चाहिए।

HH. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के पास रहे पत्र पं० भगवद्दत्त सम्पादित बृहद् पत्र व्यवहार में सम्मिलित किये जा चुके हैं।

II. यह व्याख्यान स्वामीजी ने गौरचन्द्र दत्त के निवास पर दिया था। इसे स्वामीजी ने संस्कृत में दिया और गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज कलकत्ता के उपाचार्य पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न ने इसका बंगला में अनुवाद किया जो वक्ता के मूल कथन के विपरीत था।

JJ. स्वामीजी के पत्रों और विज्ञापनों का यथासम्भव सुव्यवस्थित सम्पादक पं० भगवद्दत्त तथा पं० युधिष्ठिर मीमांसक कर चुके हैं।

KK. पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा का निधन ३१ मार्च १९३१ को स्विट्जरलैण्ड के जेनेवा नगर में हुआ।

LL. मुन्शी समर्थदान स्वामीजी का अत्यधिक विश्वासपात्र कर्मचारी था जिसे स्वामीजी ने वेदभाष्य के मुद्रण का काम सौंपा था। १८८२ में उसे वैदिक यन्त्रालय का मैनेजर बनाया। इस पद पर वह १८८६ तक रहा।

MM. कुरान का यह हिन्दी अनुवाद स्वामीजी ने पटना के मुन्शी मनोहरलाल से करवाया था। पाण्डुलिपि रूप में यह परोपकारिणी सभा के पास सुरक्षित है।

NN. वस्तुतः आर्यसमाज की स्थापना चैत्र शुक्ल पंचमी १९३२ वि० शनिवार (१० अप्रैल १८७५) को हुई थी। पुराने ग्रन्थ तता दस्तावेज इसी तिथि की पुष्टि करते हैं।

OO. स्वामीजी के प्रचार कार्य, शास्त्रार्थ तथा अन्य लोकोपकारी क्रियाकलाप का विवरण तत्कालीन भारतीय भाषाओं (मुख्यतः हिन्दी, उर्दू, बंगला, मराठी, गुजराती) के पत्रों तथा एतदेशीय अंग्रेजी पत्रों में छपता रहा। सम्भवतः विदेशी पत्रों में भी छपा हो।

चौदहवें समुल्लास पर वक्तव्य

संसार के समस्त मुसलमानों की दृष्टि में परम माननीय जो धर्म ग्रन्थ है उसका नाम वास्तव में 'कुरआन' है, जिसको कि प्रायः कुरान कहा जाता है। वह लोग इसको ईश्वरीय वचन मानते हैं इस कारण इसको कलामुल्लाह भी कहा जाता है। परन्तु आदर व प्रतिष्ठा आदि के विचार से कुरान को 'कलाम मज़ीद' 'कुरान करीम' आदि भी कहा जाता है।

श्री स्वामीजी ने कुरान के विषय में चौदहवें समुल्लास में थोड़ा-सा लिखा है और उक्त समुल्लास से सम्बन्ध रखने वाली अनुभूमिका में इस समुल्लास व कुरान के विषय में यह लिखा है—

"जो यह चवदहवाँ समुल्लास मुसलमानों के मत विषय में लिखा है तो केवल कुरान के अभिप्राय से; अन्य ग्रन्थ के मत से नहीं क्योंकि मुसलमान कुरान पर ही पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं, यद्यपि फिरक़े होने के कारण किसी शब्द, अर्थ आदि विषय में विरुद्ध बात है तथापि कुरान पर सब एक मत्य है।"

समस्त मुसलमान कुरान को अपने मत का मूल पुस्तक मानते हैं अथवा यह कि कुरान पर सब एक मत हैं—इस विषय में कुछ बदले में प्रयोग किया जाय तो कोई न समझेगा। जो लोग कुरान का पाठ ३० दिनों में समाप्त करना चाहें उनके लिये स्पष्ट रहे कि प्रतिदिन कितना पढ़ना चाहिये। इस कारण पारा के विचार से सारा कुरान ३० भागों में विभक्त माना जाता है।

(३) सूरत या सूरः शब्द अरबी भाषा का है। जिस प्रकार मंज़िल और पारा के विचार से कुरान के खण्ड हैं उसी प्रकार सूरत के विचार से भी सम्पूर्ण कुरान विभक्त है। फलतः सूरत का अर्थ हुआ—कुरान का एक खण्ड। परन्तु सूरत का अर्थ श्रेष्ठता भी है।

मज़िल व पारा के मुकाबिले में सूरत की महत्ता अधिक मानी

जाती है। समस्त कुरान में कुल ११४ सूरतें (विभाग) हैं। परन्तु कोई-कोई सूरत किसी पारा से बड़ी है। उदाहरणार्थ, ज्ञात रहे कि दूसरी सूरत अर्थात् सूरत बक़र के अन्तर्गत ढ़ाई पारे हैं। परन्तु कोई-कोई पारा ऐसा है कि उसमें बहुत-सी सूरतें हैं जैसे कि अन्तिम अर्थात् तीसवाँ पारा है कि उसमें ३७ सूरतें हैं।

(४) आयत शब्द अरबी का है। अर्थ है—चिह्न, वाक्य, अंश। कोई आयत छोटी होती है कोई कुछ बड़ी हुआ करती है। परन्तु प्रत्येक पारा या सूरत में अनेक आयतें हुआ करती हैं।

कुरान में सूरत का पद श्रेष्ठ माना जाता है इस कारण आयतों की गणना सूरत के विचार से हुआ करती है अर्थात् किसी आयत का परिचय देते हुये यह कहना अच्छा होता है कि अमुक सूरत की अमुक संख्या वाली आयत। कई आयतों के समूह से जो खण्ड बनता है उसको रुकू कहते हैं[1]। यह अरबी शब्द है। इसका अर्थ है—झुकना। हाँ, ज्ञात रहे कि इसकी चर्चा चौदहवें समुल्लास में नहीं है किन्तु केवल जानकारी के लिये ही मैंने इसका उल्लेख कर दिया है।

कुरान में सूरत को महत्ता प्राप्त है। यही कारण है कि ११४ सूरतों में से नवीं सूरत तौबा को छोड़ कर बाकी ११३ सूरतों के पूर्व 'बिस्मिलाहिर्‌हिमानर्‌रहीम' है। केवल ६२ सूरतों पर श्री स्वामीजी की ओर से समीक्षाएँ हैं।

विद्वद्वर फ़ैज़ी और क़ुरान—"क्या अकबर बादशाह के समय में मौलवी फैज़ी ने बिना नुक्ते का कुरान नहीं बना लिया?"

उक्त शब्द समीक्ष्य पद ८ से सम्बन्ध रखने वाले हैं। ज्ञात रहे कि विद्वद्वर फ़ैज़ी (स्वर्गीय सन् १५९५ ई०) अरबी व फारसी के बड़े विद्वान् थे। सम्राट अकबर के नवरत्नों में से एक रत्न थे। इनके रचे अनेक ग्रन्थ गद्य व पद्य में हैं। उन्हीं में से 'सवातिउल्इल्हाम्' नामी अपूर्व ग्रन्थ भी है। कुरान का यह एक अपूर्व भाष्य अरबी में है। इसी की ओर उक्त शब्दों में संकेत है।

---

१. प्रत्येक पारा में अनेक रकू हैं। परन्तु सूरत 'अबस' अर्थात् सूरत संख्या ८० से लेकर अन्त तक की ३५ सूरतें ऐसी हैं जिनमें से प्रत्येक सूरत केवल एक ही रकू की है—लेखक।

अरबी वर्णमाला में कुल २८ अक्षर होते हैं। उनमें से १५ नुक़्ते (बिन्दी) वाले और १३ बिना बिन्दी वाले हैं। कुरान में जो शब्द हैं वे बिना बिन्दी वाले व बिन्दी वाले दोनों प्रकार के अक्षरों से बने हैं किन्तु विद्वद्वर फ़ैज़ी ने समस्त कुरान का भाष्य ऐसे शब्दों द्वारा किया है जो सब के सब बिना बिन्दी वाले हैं अर्थात् अरबी के केवल १३ अक्षरों से ही बने हैं। इस अमूल्य भाष्य की हस्तलिखित प्रतियाँ संसार के अनेक पुस्तकालयों में हैं किन्तु इसका प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से सन् १८९९ ई० (सन् १३०६ हिजरी) में हो चुका है। इस संस्करण में कुल पृष्ठ (बड़े आकार के) ८०० से कुछ कम हैं। मूल भाष्य ७०६ पृष्ठों में है। बाकी पृष्ठों में अनेक शब्दों की व्याख्या है और अनेक लोगों के प्रशंसापूर्ण कथन हैं। सम्भव है कि उक्त अमूल्य ग्रन्थ का कोई संस्करण किसी अन्य प्रेस में भी छपा हो किन्तु उक्त संस्करण के सिवा कोई अन्य संस्करण किसी अन्य प्रेस का छपा हुआ मेरी दृष्टि में नहीं आया।

तफ़सीर हुसैनी की दो टिप्पणियाँ—मुल्ला हुसैन वाइज़ काशफ़ी स्वर्गीय ९१० हिजरी (सन् १५०५ ई०) अरबी व फ़ारसी के एक अद्वितीय विद्वान् थे। अनेक पुस्तकें इनके द्वारा रची गई हैं। फारसी में 'अनवार सुहैली' व 'अखलाक़ मुहसनी' इनकी ऐसी पुस्तकें हैं जिनका चलन भारत तथा अन्य देशों में कुछ कम नहीं। इन्हीं का रचा हुआ 'तफसीर हुसैनी' नामक ग्रन्थ कुरान का एक अपूर्व भाष्य फारसी में है। इस भाष्य को 'मवाहिब अलीयः' भी कहा जाता है। मुल्ला साहब ने कई वर्षों के लगातार परिश्रम के पश्चात् इस अपूर्व ग्रन्थ को समाप्त किया था। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ संसार के अनेक पुस्तकालयों में हैं। किन्तु इसके छपे हुये रूप जो मेरी दृष्टि में आये हैं उनमें से दो यह हैं। इन दोनों संस्करणों से में प्रत्येक संस्करण दो भागों में विभक्त है।

(१) नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में पहिला भाग जनवरी सन् १८७४ ई० (ज़िल् हिज्जा मास सन् १२९० हिजरी) में दूसरी बार का छपा हुआ।

उक्त प्रेस से ही दूसरा भाग मार्च सन् १८७४ ई० (मुहर्रम मास सन् १२९१ हिजरी) में दूसरी बार का छपा हुआ।

(२) अहमदी प्रेस कानपुर में अप्रैल सन् १८९५ ई० (शौवाल सन् १३१२ हिजरी) का छपा हुआ पहिला भाग।

उक्त प्रेस से ही दूसरा भाग नवम्बर १८९५ ई० (जमादी औवल सन् १३१३ हिजरी) का छपा हुआ।

उक्त दोनों संस्करणों में समीक्ष्यपद ३९ व १३७ से सम्बन्ध रखने वाली पादटिप्पणियाँ जिन पृष्ठों में हैं उनका विवरण नीचे दिया जाता है ताकि मूल फारसी भाष्य अर्थात् 'तफसीर हुसैनी' में लोग उन टिप्पणियों की बातों को भली-भाँति देख सकें। फलतः ३९ के निमित्त देखना चाहिये—

(१) लखनऊ के संस्करण सन् १८७४ ई० के पहिले भाग का पृष्ठ ४४ व ४५।

(२) कानपुर के संस्करण सन् १३१२ हिजरी (सन् १८९५ ई०) के प्रथम भाग का पृष्ठ ४१।

समीक्ष्यपद १३७ से सम्बन्ध रखने वाली पादटिप्पणी के निमित्त देखना चाहिये—

(१) लखनऊ के संस्करण सन् १८७४ ई० के दूसरे भाग का पृ० २९९।

(२) कानपुर के संस्करण सन् १३१३ हिजरी के दूसरे भाग का पृ० ६४७।

उक्त प्रेसों के अन्य सनों के संस्करणों में भी सम्भव है कि उन्हीं पृष्ठों में ३९ व १३७ से सम्बन्ध रखने वाली बातें हों जिन पृष्ठों में ऊपर के संस्करणों में बताई गई हैं अन्यथा दो-एक आगे-पीछे के पृष्ठों में हो सकती हैं।

'तफसीर हुसैनी' के अच्छे होने का परिचय इस बात से भी मिलता है कि मूल फारसी का अनुवाद उर्दू में हो गया है और उसके दस संस्करण अक्तूबर सन् १९२८ ई० तक निकल छप चुके हैं। उर्दू का पहला संस्करण कब निकला था—इस बात को मैं नहीं जान सका किन्तु यह अवश्य जान सका हूँ कि उर्दू अनुवाद का दूसरा संस्करण सन् १८८३ ई० में निकला था और वह पंजाब पब्लिक लायब्रेरी लाहौर में अवश्य है।

उर्दू अनुवाद 'तफ़सीर कादरी' के नाम से नवलकिशोर प्रेस

लखनऊ का ही भिन्न-भिन्न समयों का छपा हुआ मेरी दृष्टि में आया है। उर्दू अनुवादक का नाम मौलवी फ़ख़रउद्दीन अहमद कादरी है। उक्त उर्दू अनुवाद का कोई न कोई संस्करण भारत के अनेक बड़े नगरों के बड़े पुस्तकालयों में मैंने स्वयं देखा है।

ज्ञात रहे कि 'तफ़सीर कादिरी' आवृति पंचम प्रकाशित सन् १८९० ई० व आवृति दशम प्रकाशित सन् १९२८ ई० के प्रथम भाग के पृष्ठ ७० व ७१ में समीक्षा ३९ से सम्बन्ध रखने वाली पादटिप्पणी की बातें हैं और पादटिप्पणी में जिस मनुष्य के विषय में उल्लेख है कि वह हज़रत मुहम्मद साहब के पास आया उसका नाम उक्त उर्दू या फारसी भाष्यों में अबुद्दहदाह अनसारी लिखा हुआ मिलता है।

समीक्षा १३७ की पादटिप्पणी से सम्बन्ध रखने वाली बातें उक्त उर्दू भाष्य की दोनों आवृत्तियों के दूसरे भाग के पृष्ठ ३९८ में मिलती हैं।

भ्रमनिवारण—श्री स्वामीजी महाराज ने संवत् १९२० वि० (सन् १८६३ ई०) में प्रचार कार्य आरम्भ किया था। उन्होंने पहले जो कुछ कहा या लिखा वह सब का सब हिन्दू-धर्म के निमित्त था।

श्री स्वामीजी के जीवन-चरितों से ऐसा पता चलता है कि जून सन् १८६६ ई० (ज्येष्ठ अधिक संवत् १९२३ वि०) में अजमेर में श्री स्वामीजी की बातचीत धर्म विषय पर एक मौलवी साहब से हुई थी। इस समय से पूर्व किसी मुसलमान (मौलवी) से श्री स्वामीजी की बातचीत धर्म विषय पर थी या नहीं—निश्चय रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सम्भवतः यही पहला अवसर है जब कि किसी मुसलमान सज्जन से धर्म सम्बन्धी बातें हुई थीं।[1] इस समय के पश्चात् श्री स्वामीजी के अनेक शास्त्रार्थ मुसलमानों के साथ हुये हैं और अनेक अवसरों पर उन्होंने मुसलमानों के विषय में व्याख्यान दिये हैं। यहाँ तक कि हिन्दी में कुरान तैयार कराया और चौदहवाँ समुल्लास लिखा है।

सत्यार्थप्रकाश का जो संस्करण सन् १८७५ ई० में प्रकाशित हुआ था उसमें केवल १२ समुल्लास थे। ईसाइयों से सम्बन्ध रखने

१. ईसाइयों के साथ भी पहले पहल सम्भवतः अजमेर में ही धर्मविषयक बातें इसी अवसर पर हुई थीं—लेखक

वाला तेरहवाँ और मुसलमानों वाला चौदहवाँ अर्थात् अन्त के दो समुल्लास उसमें जल्दी के कारण न छप सके थे।

सन् १८८४ ई० में सत्यार्थप्रकाश का जो संस्करण निकला है उसमें ही सबसे पहले उक्त दोनों समुल्लास सम्मिलित हुये हैं। ऐसा होने से ईसाई तो कम या बिल्कुल नहीं, किन्तु मुसलमान लोग ईसाइयों के भी आनरेरी वकील बनकर कभी-कभी इस प्रकार का भ्रम फैलाया करते हैं—श्री स्वामीजी ने उक्त दोनों समुल्लासों को नहीं लिखा था। बल्कि अन्य किसी ने उक्त दोनों समुल्लासों को लिखा है और उनको सत्यार्थप्रकाश में लगा दिया है और यही कारण है कि सन् १८८४ ई० में, उनकी मृत्यु के पश्चात् सत्यार्थप्रकाश छपा है—इत्यादि।

इस प्रकार के भ्रम के निवारणार्थ जानना चाहिये कि सन् १८७५ ई० के संस्करण के दसवें समुल्लास के अन्तिम अंश में जो कुछ लिखा हुआ मिलता है उससे स्पष्ट है कि उन्होंने अन्त के चार समुल्लासों के लिखने का निश्चय किया था[१]। किन्तु लिखित रूप में केवल दो ही समुल्लास सन् १८७५ ई० के संस्करण में स्थान पा सके थे। बाकी दो समुल्लास तेरहवें व चौदहवें उक्त संस्करण में न शामिल हो सके थे[२]। कारण यह कि उस संस्करण के प्रकाशन में बहुत जल्दी की गई थी।

ईसाई व मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाले समुल्लास वास्तव में सन् १८७५ ई० के संस्करण के निमित्त लिखे गये थे—इस बात की पुष्टि एक पत्र[३] से इस प्रकार होती है—

"सत्यार्थप्रकाश कितने अध्याय तक छपा? जितना छपा हो तितना राजा जयकिशनदास के पास भेज दो। जल्दी छापो। यहाँ

---

१. इस निश्चय का उल्लेख उन संस्करणों के दसवें समुल्लास के अन्तिम भाग में भी मिलता है जो कि सन् १८८४ ई० के संस्करण के आधार पर हैं—लेखक

२. इस बात की पुष्टि संस्करण सन् १८८४ ई० अथवा उसके आधार पर छपे हुए समस्त संस्करणों की भूमिका से भी होती है—लेखक।

३. यह पत्र मुंशी हरिवंशलालजी के नाम अहमदाबाद से बनारस भेजा गया था जिन के अधिकार से स्टार प्रेस बनारस में १८७५ ई० का संस्करण छपा था। अब यह प्रेस जीवित नहीं है—लेखक।

बहुत से लोग लेने को कहते हैं। इसके बिना बहुत हरकत (कमी) है और शिक्षा की पुस्तक छपी कि नहीं। आगे शुभ हो।

संवत् १९३१ मिती माघ बदी २ शनिवार अर्थात् २३ जनवरी सन् १८७५ ई० आगे मुरादाबाद में कुरान के समीक्षण का अध्याय शोधन के वास्ते गया रहा सो शोध के आप के पास आया कि नहीं। जो न आया हो तो राजा जयकिशनदासजी को खत लिखो, जल्दी छापने के वास्ते भेज देवें और बाइबिल का अध्याय सब शोध करके छाप दो। दो महीने में छापने के वास्ते जो आपने लिखा सो दो महीने में सब पुस्तक छाप दो शुद्ध करके अशुद्ध न होने पाये।''[1]

फलतः सन् १८७४ ई० के अन्तिम दिनों अथवा जनवरी सन् १८७५ ई० के आरम्भ में ही श्री स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें व चौदहवें समुल्लासों अथवा केवल चौदहवें को लिखा होगा। परन्तु इन दोनों के छपने की नौबत सन् १८७५ ई० के संस्करण में न आई थी और दोनों समुल्लास सन् १८८४ ई० में छप सके थे।

श्री स्वामीजी ने दोनों समुल्लासों में बाइबिल व कुरान के विषय में वस्तुतः थोड़ा ही थोड़ा लिखा है जैसा कि तेरहवें व चौदहवें समुल्लासों के अन्तिम शब्दों से स्पष्ट है। अब जानना चाहिये कि श्री स्वामीजी ने प्रोटेस्टेण्ट ईसाइयों की बाइबिल की बात ही लिखी है और उनकी पूरी बाइबिल हिन्दी में उस समय प्राप्त थी। हिन्दी जानने वालों के लिये अवसर प्राप्त था कि बाइबिल के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकें। परन्तु हिन्दी जानने वालों के लिये हिन्दी में कोई कुरान न था। इसी कारण उन्होंने कुरान को हिन्दी में छपाने का विचार किया था क्योंकि 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' द्वितीय भाग प्रकाशित सन् १९१९ ई० में दानापुर के बाबू माधोलालजी के नाम का एक पत्र[2] जो २४ अप्रैल सन् १८७९ ई० का लिखा हुआ

१. श्री पण्डित लेखरामजी द्वारा संगृहीत सामग्री के आधार पर 'महर्षि दयानन्द—उर्दू' नाम का जीवन चरित जो सन् १८९७ ई० में तैयार होकर आर्य प्रतिनिधि सबा लाहोर द्वारा प्रकाशित—पृ० २३४।

२. इस पत्र तथा अन्य १७ पत्रों की असली प्रतियाँ दानापुर में हैं। मैंने २० जून सन् १८४३ ई० को उक्त सब पत्रों को स्वयं देखा है। श्री पण्डित भगवद्दत्तजी द्वारा सम्पादित 'ऋषि दयानन्द के पत्र व विज्ञापन' के दूसरे भाग का पृष्ठ १७ देखना चाहिये—लेखक।

श्री स्वामीजी की ओर से अंग्रेजी में है उसके यह शब्द हैं—

The "Koran" in Nagri is entirely ready but has not been printed yet.

(कुरान नागरी में पूरा तैयार है परन्तु अभी तक छापा नहीं गया)

श्री स्वामीजी ने चौदहवें समुल्लास से सम्बन्ध रखने वाली अनुभूमिका में जो कुछ लिखा है उससे इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि हिन्दी में कुरान क्योंकर उन्होंने तैयार कराया था—

"जो कुरान अरबी भाषा में है उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्य भाषान्तर करा के पश्चात् अरबी के बड़े-बड़े विद्वान् से शुद्ध करवा के लिखा गया है।"

हिन्दी में कुरान की तैयारी का आरम्भ कब हुआ था—इस बात को अभी तक मैं नहीं जान सका। हाँ, इस बात को अवश्य बहुत कुछ जान सका हूँ कि यह कार्य कब पूरा हुआ था। क्योंकि श्री स्वामीजी द्वारा तैयार कराई हुई हिन्दी कुरान की वह प्रति मेरी दृष्टि में आई है जो पुस्तक रूप में ठीक-ठीक अच्छे ढङ्ग पर लिखी हुई है और उसके अन्त में उसके लिखे अर्थात् साफ-साफ नकल किये जाने का समय कार्तिक शुक्ल ९ संवत् १९३५ वि० (३ नवम्बर सन् १८७८ ई०) अंकित है। यह प्रति अजमेर में परोपकारिणी सभा के वैदिक पुस्तकालय में मौजूद है। ११×७/१-२ इंच आकार के ७२५ पृष्ठों की है। पहले ७२२ पृष्ठों में मूल कुरान का अनुवाद है। पृष्ठों के किनारों पर कुछ शब्दों का अर्थ है और कहीं-कहीं कुछ और टिप्पणियाँ भी हैं। किन्तु पृष्ठ ७२३ व ७२४ में केवल मूल कुरान का अनुवाद है अर्थात् इन पृष्ठों के किनारों पर भी मूल कुरान का अनुवाद ही है और पृष्ठ ७२५ के किनारों पर शब्दार्थ आदि कुछ नहीं है, क्योंकि मूल कुरान के अन्तिम भाग के ही थोड़े से अंश का अनुवाद है।

श्री बाबू माधोलालजी के नाम के पत्र के जो शब्द ऊपर दिये गये हैं उनसे वस्तुतः ऊपर वर्णित (हिन्दी कुरान की) प्रति से अभिप्राय है और इसमें सन्देह नहीं कि अब (सन् १९४३ ई०) तक हिन्दी में कई कुरान छप चुके हैं परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि श्री स्वामीजी महाराज ही पहले व्यक्ति हैं जिनके उद्योग

से सब से पहिले हिन्दी में कुरान हुआ है और यदि उसके छपने की नौबत उनके जीवन काल या बाद में भी आ गई होती तो सोने में सुगन्धि हो जाती। वास्तव में श्री स्वामीजी की यह बात कुछ कम मारके की नहीं कि उन्होंने हिन्दी वालों के लिये यह उद्योग किया था कि वह जान सकें कि कुरान में क्या है जिस पर सारे मुसलमान एकमत हैं और पढ़े-लिखे व अनपढ़ जिसके सभी बड़े भक्त हैं।

अब अन्त में यह कहना उचित प्रतीत होता है कि सत्यार्थप्रकाश के संस्करण १८७५ ई० के निमित्त जो सामग्री चौदहवें समुल्लास की थी वह उक्त संस्करण में शामिल न हो सकी और उसी सामग्री को उक्त हिन्दी कुरान की सामग्री के आधार पर रखा गया। निदान सन् १८८४ ई० के संस्करण में चौदहवें समुल्लास की इति श्री कुरान के उक्त हिन्दी प्रति की सामग्री के आधार पर ही अवश्य हुई है। क्योंकि चौदहवें समुल्लास में आयतों की संख्या और समीक्ष्य पदों के भाव आदि उक्त प्रति से ही बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं।

अब इसी अवसर पर थोड़ा-सा यह भी जानना चाहिये कि तेरहवाँ समुल्लास मिशन प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित इन ग्रन्थों के आधार पर है—

पुराना नियम (Old Testament)—प्रथम भाग (इसमें 'उत्पत्ति' से लेकर 'राजाओं की दूसरी पुस्तक' तक है) प्रकाशित सन् १८६९ ई०।

नया नियम (New Testament)—प्रकाशित सन् १८७४ ई० ऐसी दशा में ठीक बात यह है कि सन् १८७५ ई० के संस्करण के लिये यह समुल्लास जैसा तैयार हुआ वैसा ही सन् १८८४ ई० के संस्करण के लिये भी रहा। यदि कुछ संशोधन भी हुआ होगा तो बहुत ही कम।

क्योंकर लिखा गया—श्री स्वामीजी महाराज ने जिस समय हिन्दी में कुरान का अनुवाद कराया था उस समय तक वस्तुतः दो ही उर्दू अनुवाद पूरे थे। दोनों अनुवादों के अनुवादक दिल्ली के सुप्रसिद्ध विद्वान् शाह वलीउल्ला[१] साहब के दो बेटे थे—

---

१. मौलाना शाह वलीउल्ला साहब पहले भारतीय मुसलमान हैं जिन्होंने कुरान का अनुवाद फारसी में किया था—लेखक।

(१) मौलाना शाह रफ़ीउद्दीन साहब—यह सन् ११६३ हिजरी (सन् १७४९ में या १७५० ई०) में पैदा हुये थे। इनका देहान्त सन् १८१८ ई० में हुआ था। यह शाह वलीउल्ला साहब के द्वितीय पुत्र थे।

(२) मौलाना शाह अब्दुलक़ादिर साहब—यह सन् ११६७ हिजरी (सन् १७५३ या १७५४ ई०) में पैदा हुये थे अर्थात् मौलाना शाह रफ़ीउद्दीन साहब के छोटे भाई थे। इनके देहान्त का समय कहीं ९ रजब सन् १२४३ हिजरी (सन् १८२८ ई०) और कहीं १२३० हिजरी लिखा हुआ मिलता है।

इन दोनों भाइयों में से किसने पहले उर्दू में अनुवाद किया—इस बात की बाबत ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह स्पष्ट रहे कि दोनों अनुवाद यद्यपि काफ़ी पुराने हो चुके हैं और इनके पश्चात् अब सन् १९४३ ई० तक अनेक अनुवाद उर्दू में हो चुके हैं तथापि दोनों का चलन अब भी बहुत ज्यादा है।

दोनों अनुवादकों के अनुवादों के संस्करण किसी न किसी प्रकाशक द्वारा प्रकाशित प्रत्येक बड़े नगर में मिल जाते हैं इस कारण किसी विशेष संस्करण से अर्थों का मुकाबिला चौदहवें समुल्लास के समीक्ष्य पदों के साथ भली-भाँति किया जा सकता है और यह बात जानी जा सकती है कि चौदहवें समुल्लास के समीक्ष्य पदों में जो शब्द तथा भाव हैं वे मौलाना शाह रफ़ीउद्दीन साहब के अनुवाद से बहुत कुछ मिलते हैं और समीक्ष्य पदों के शब्दों की आधारशिला हिन्दी कुरान के शब्दों पर है। निदान शब्दों को बहुत कुछ मौलाना शाह रफ़ीउद्दीन साहब के अनुवाद पर निर्भर समझना चाहिये। परन्तु साथ ही साथ यह भी जान लेना चाहिये कि मौलवी शाह अब्दुलकादिर साहब के अनुवाद से भी कुछ सहायता हिन्दी कुरान के निमित्त अवश्य ली गई है क्योंकि समीक्ष्य पदों के शब्द पूर्ण रूप से मौलाना शाह रफ़ीउद्दीन साहब के शब्दों तथा भावों से नहीं मिलते बल्कि कहीं-कहीं भिन्नता है और यह भिन्नता वास्तव में मौलाना शाह अबुलकादिर साहब के अनुवाद की बदौलत पैदा हुई है।

हाँ, एक और ग्रन्थ 'तफ़सीर हुसैनी' नाम का है जिससे चौदहवें समुल्लास के निमित्त अवश्य सहायता ली गई है क्योंकि समीक्ष्य पद

३९ व १३७ से सम्बन्ध रखने वाली दो पादटिप्पणियाँ उक्त ग्रन्थ के ही आधार पर हैं। कुरान का मूल पाठ या उसके किसी अनुवाद को बिना किसी टीका या भाष्य के पूरा-पूरा समझना सर्वथा असम्भव है। फलतः 'तफ़सीर हुसैनी' नामक भाष्य से कुछ सहायता अवश्य ली गई है। उदाहरणार्थ, जानना चाहिये कि समीक्ष्य-पद १०२ के अन्तिम भाग में जो कुछ है और उसके विषय में जो कुछ समीक्षा है वह वास्तव में 'तफ़सीर हुसैनी' पर ही निर्भर है—

(अ) और बहुत मारे.......नूह के। (समीक्ष्य पद)

(आ) जो खुदा ही ने.......नहीं हो सकता। (समीक्षक)

उक्त समीक्ष्य पद के सिवा कुछ अन्य स्थलों में भी उक्त भाष्य से ही सम्बन्ध रखने वाली बातें हैं। उक्त भाष्य के विषय में विस्तार पूर्वक पहले ही लिखा जा चुका है जहाँ पर इस भाष्य से सम्बन्ध रखने वाली दो टिप्पणियों का उल्लेख किया गया है।

क्यों लिखा गया—यदि कोई व्यक्ति किसी बात के सम्बन्ध में अपने सन्मुख दो बातों को रखे—'क्या' और 'क्यों'? ऐसी दशा में वह उस बात के रहस्य को भली-भाँति जान सकेगा। उक्त दोनों बातों को सम्मुख रखकर मैं सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास की बाबत पाठकों को कुछ बतलाना चाहता हूँ।

चौदहवें समुल्लास में क्या है? इस बात के जतलाने की तो आवश्यकता नहीं। इस कारण केवल यह बतलाना है कि क्यों इस समुल्लास के लिखने की आवश्यकता पड़ी। कौन नहीं जानता कि श्री स्वामीजी ने सन् १८६३ ई० में अपना कार्य आरम्भ किया था। मुसलमानों का पतन राष्ट्रीय दृष्टि से उस समय से कुछ पहले ही हो चुका था, किन्तु धार्मिक दृष्टि से उनमें जागृति हो गई थी। इसी बात का फल था कि अनेक मुसलमानों ने सन् १८३० ई० में सिक्खों के साथ धर्म युद्ध किया था और सन् १८५७ ई० में भी अंग्रेजों से लड़ना अपना कर्त्तव्य समझा था। निदान धार्मिक भावों का ही फल कहना चाहिये कि कुछ लोगों ने हिन्दुओं के विरुद्ध पुस्तकें लिखी। उक्त विषय से सम्बन्ध रखने वाली जिन पुस्तकों को मैं अब तक जान सका हूँ उनमें से सबसे पुरानी 'रद्द हिन्दू' नामक पुस्तक है जिस पर लेखक का नाम मौलवी 'मुहम्मद इस्माइल कोकनी रतनागीरी' छपा

है। उक्त पुस्तक बम्बई में सन् १२६१ हिजरी (अर्थात् सन् १८४५ ई०) में मुहम्मद इद्रीस बिन अब्दुल्ला चलमाई द्वारा पहले पहल छपवाई गई है। इसके उक्त संस्करण को मैंने स्वयं देखा है और इस पुस्तक के उस संस्करण को भी देखा है जो सन् हिजरी १२६७ के ज़िलहिज्ज मास अर्थात् अक्तूबर या नवम्बर सन् १८५० ई० में कानपुर से प्रकाशित हुआ। उक्त संस्करणों के सिवा इस पुस्तक के कई अन्य संस्करण भी निकले हैं। श्री स्वामी दयानन्दजी के कई जीवन चरित्रों में 'रद्द हिन्दू' के बदले पुस्तक का नाम 'रद्दे हनूद' अशुद्ध लिखा हुआ है।

भारत के अनेक पुस्तकालयों में 'रद्द हिन्दू' का कोई न कोई संस्करण है। इस पुस्तक में जो कुछ लिखा हुआ है वह सब प्रश्न उत्तर के रूप में (उर्दू में) है। इसके उत्तर में 'रद्द मुसलमान' के नाम से एक पुस्तक श्री चौबे बद्रीदासजी की ओर से अवश्य निकली थी। यह मेरी दृष्टि में आई थी और इसका उल्लेख कुछ ग्रन्थों में मिलता है।

उक्त दोनों पुस्तकों के सिवा बाद में जिन पुस्तकों के लिखे जाने का पता चलता है उनका विवरण संक्षेप में इस प्रकार है—

'तुहफ़तुलहिन्द' के नाम से १२६८ हिजरी (सन् १८५१ या १८५२ ई०) में एक पुस्तक एक ऐसे व्यक्ति की लिखी हुई प्रकाशित हुई जो कि हिन्दू थे किन्तु बाद को १८६४ हिजरी (सन् १८४८ ई०) में मुसलमान हो गये थे। इनका पहला नाम अनन्तराम था। उक्त पुस्तक तो उर्दू में थी किन्तु उसके उत्तर में मुरादाबाद के मुंशी इन्द्रमणिजी की ओर से फ़ारसी में 'तुहफ़तुल इस्लाम' नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई। इसके उत्तर में मौलवी सैय्यद महमूद हुसेन साहब ने 'खिलअतुल हनूद' नाम की पुस्तक फ़ारसी में सन् १२८१ हिजरी (सन् १८६४ या १८६५ ई० में) प्रकाशित कराई। इसके उत्तर में मुंशी इन्द्रमणिजी की ओर से 'पादाश इस्लाम' नाम की पुस्तक सन् १८६६ ई० में (फ़ारसी में) प्रकाशित हुई।

बरेली के किसी मुसलमान सज्जन की ओर से 'मस्नवी ओसूल दीन हिन्दू' के नाम की पुस्तक (पद्य में) प्रकाशित हुई[१] तो इसका

१. इस पुस्तक के प्रकाशित होने का समय नहीं मालूम हो सका—लेखक।

उत्तर मुन्शीजी ने 'मस्नवी दीन अहमद' नामी पुस्तक में (पद्य में) सन् १८६९ ई० में दिया। इसके पश्चात् मौलाना मुहम्मद हुसैन उपनाम 'फ़कीर' साहब की पुस्तक 'तेग़ फ़कीर बर गरदन शरीर' के रचे जाने का पता लगता है। वह पुस्तक सम्भवत: १८७३ में प्रकाशित हुई थी। फिर जब मुरादाबाद के एक मुसलमान मौलवी अहमद दीन ने 'एजाज़ मुहम्मदी' और दूसरे सज्जन मौलवी कुतुब आलम ने 'हदयतुल असनाम' नाम की पुस्तकें लिखीं तो मुन्शी इन्द्रमणि की ओर से सम्वत् १९२२ वि० सन् १८६५ ई० में 'हमला हिन्द' और 'सम्सामहिन्द' नाम की पुस्तकें निकलीं और सन् १८६८ ई० में 'सौलत हिन्द' नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई।

'तुहफ़तुल हिन्द' नाम की पुस्तक का वह संस्करण मेरी दृष्टि में आया है जो कि मेरठ के हाश्मी प्रेस से तीसरी बार मुहर्रम सन् १२७७ हिजरी (सन् १८६० ई०) में प्रकाशित हुआ है। इसके लेखक जो मुसलमान हो गये थे, उनका नाम मौलवी ओबैदउल्ला लिखा हुआ है। इसमें उन अनेक हिन्दुओं का भी नाम लिखा हुआ मिला है जो कि मुसलमान हो गये थे।

हाँ, यह भी ध्यान में रहे कि सन् १८७५ ई० से कुछ पहले तथा बाद में ईसाइयों की ओर से मुसलमानों के विषय में जो कुछ लिखा गया है अथवा कहा गया है सम्भवत: उससे भी मुसलमानों में कुछ अधिक जागृति धर्म के निमित्त हुई। फलत: श्री स्वामीजी के कार्य काल (आरम्भ सन् १८६३ ई०) में अथवा इस से कुछ पूर्व काल में धर्म के नाम पर भारत में बड़ा द्वन्द्व मचा था जैसा कि—History of the Sects of Maharajas Or Vallabhacharyas in Western India[१] तथा इस प्रकार के कुछ अन्य ग्रन्थों से बहुत कुछ जाना जा सकता है।

श्री स्वामीजी महाराज धर्म के उपासक थे। वह सत्य के पुजारी

१. इस पुस्तक में कुछ अन्य सम्प्रदायों का भी उल्लेख है। इस में लेखक का नाम नहीं लिखा हुआ है। यह अंग्रेजी में है और Trabner and Co. London द्वारा सन् १८६५ ई० में सचित्र प्रकाशित हुई है। किसी को यदि किसी बड़े पुस्तकालय में देखने के लिये न मिले तो उसे हिन्दू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में मिल सकती है—लेखक।

थे। उनके कार्यकाल में आने-जाने के निमित्त वह साधन न थे, जो कि अब सन् १९४३ ई० में या अब से कुछ ही पहिले रहे हैं। चाहे कुछ हो साफ़-साफ़ बात यह है कि प्रत्येक स्थान में वह स्वयं न पहुँच सकते थे और जहाँ कहीं वह पहुँचे थे वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति उनके व्याख्यानों, शास्त्रार्थों आदि से लाभ न उठा सका था। सन् १८६३ ई० से लगभग दस वर्षों तक उन्होंने अधिकांश कार्य मौखिक ही किया था और इससे उनकी धूम मच गई थी। इस प्रकार की बात या बातों से आवश्यक हुआ था कि वह अपने विचारों को पुस्तक रूप में मुद्रित कराते ताकि अनेक लोगों को लाभ होता। ऐसी दशा में सत्यार्थप्रकाश लिखा गया जिसमें पहले उन बातों का उल्लेख है जिनका जानना व करना उत्तम है और बाद को उन बातों की चर्चा है जो उनके विचार से असत्य या अधर्मयुक्त हैं ताकि लोग उस प्रकार की बातों से दूर रहें अथवा यह कि अपने से उन असत्य या अधर्मयुक्त बातों को दूर करें। फलतः सत्यार्थप्रकाश की भूमिका से ही इस बात की भली-भाँति पुष्टि हो जाती है।

सत्यार्थप्रकाश की रचना व उसके प्रकाशन के विषय में विशेष हाथ जिस का रहा है उसके विषय में जानना चाहिये कि मुरादाबाद (संयुक्तप्रान्त) के चौबे ब्राह्मण कुलभूषण श्री राजा जयकिशनदासजी सन् १८३२ ई० में पैदा हुये और सन् १९०५ ई० में स्वर्ग लोक सिधारे थे। सन् १८६० ई० में अपनी प्रशंसनीय सेवाओं के कारण अंग्रेजी राज्य की ओर से राजा की पदवी से विभूषित किये गये थे और खिलअत व जागीर भी उनको दी गई थी। सन् १८७० ई० में सी० एस० आई० अर्थात् कम्पेनियन आफ दी स्टार आफ़ इण्डिया की उपाधि उनको सरकार की ओर से मिली थी। वह इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के फेलो थे। कई वर्ष तक डिप्टी कलक्टर के पद पर भी उन्होंने कार्य किया था। परन्तु ज्ञात रहे कि अब बीसवीं शताब्दी में अनेक भारतीय डिप्टी कलक्टरी से कहीं उच्च पद पर विराज रहे हैं और उस काल में तो बिरले ही भारतीय डिप्टी कलक्टर हुये थे। श्री राजा महोदय सब से पहिले श्री स्वामीजी से दिसम्बर सन् १८७३ ई० में मिले थे और इस समय के पश्चात् इन्हीं की प्रेरणा से सत्यार्थप्रकाश रचा गया था जो सन् १८७५ ई० में बनारस के स्टार प्रेस में छपा था। इस छपे हुये सत्यार्थप्रकाश के प्रधान अर्थात् प्रारम्भिक व प्रारम्भिक

पृष्ठ के पश्चात् वाले पृष्ठ से विदित होता है कि यह संस्करण श्री राजा महोदय की आज्ञा व उनके दाम से छपा था। अतः सत्यार्थप्रकाश की रचना व प्रकाशन के मूल कारण श्री राजा महोदय ऐसे व्यक्ति थे।

श्री सर सैयद अहमद खाँ बहादुर का जीवन चरित उर्दू में 'हयात जावेद' नाम से मौलाना अल्ताफ़ हुसैन हाली द्वारा रचित है। इससे प्रतीत होता है कि सर सैयद के एक बड़े मित्र राजाजी भी थे। उक्त ग्रन्थ का जो संस्करण सन् १९३९ ई० में अंजुमन तरक्की उर्दू के कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित है उसके दूसरे भाग के पृष्ठ ४४३[१] से स्पष्ट है कि सर सैयद महोदय के सुपुत्र श्री सैयद महमूद श्री राजाजी को 'चाचा' और इनके सुपुत्र श्री रास मसऊद श्री राजाजी को 'दादा राजा' कहते थे। श्री राजाजी का परिचय Dictionary of Indian Biography by C. E. Buckland published by Swan Sonnenschein & Co. London (1906 A.D.) के पष्ठ २९९ में और अधिक मिल सकता है।

हाँ, यह कि श्री स्वामीजी ने चौदहवाँ समुल्लास क्यों लिखा अथवा यह कि उन्होंने कुरान व इस्लाम के विषय में क्यों लिखा? इस प्रश्न का उत्तर सुगमता के साथ मिल जाता है जब इस बात को सन्मुख रखा जाय कि उस समय (श्री स्वामीजी के कार्य काल अथवा उससे कुछ पूर्व काल) में मुसलमानों में धार्मिक जागृति थी और उस जागृति के कारण अनेक लोग विशेषकर हिन्दू अपने धर्म को तुच्छ समझकर मुसलमान हो गये थे अथवा हो रहे थे। ऐसी दशा में श्री स्वामीजी ने उचित समझा होगा कि लोगों को कुरान के आशय से सचेत किया जाय ताकि लोग कुरान के मत को श्रेष्ठ समझकर मुसलमान न बनें।

मैं कहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात पर विचार करे कि उसके आस-पास या जिले में श्री स्वामीजी के कार्य-काल में हिन्दुओं

१. इस पृष्ठ के सिवा 'हयात जावेद' प्रथम भाग के पृष्ठ ९२, ११६, १३८ और दूसरे भाग के ४४५ में भी श्री राजाजी का उल्लेख है। 'खतूत सर सैयद' नाम के उर्दू ग्रन्थ। निज़ामी प्रेस बदायूँ (उ०प्र०) से सन् १९२४ ई० में मुद्रित) में राजा महोदय के नाम का एक पत्र श्री सर सैयद साहब की ओर से है—लेखक।

की क्या दशा थी और कौन-सा पढ़ा या अनपढ़ हिन्दू उनके कार्य-काल में अथवा उनके कार्य-काल से कुछ पहले मुसलमान हुआ था। ऐसी दशा में वह अवश्य यह जानेगा कि धार्मिक दृष्टि से इस्लाम का अच्छा प्रभाव हिन्दुओं पर था अथवा यह कि मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाली अनेक बातें हिन्दुओं में प्रचलित थीं। उदाहरणार्थ, जानना चाहिये कि अनेक हिन्दुओं में ताज़िया पूजने की प्रथा थी और विद्या आरम्भ 'बिस्मिला' से होता था। अनेक हिन्दुओं में फ़ारसी व उर्दू के पठन-पाठन का भारी चलन था और ऐसे लोग पत्रों के आरम्भ में 'बिस्मिलाहिर् रहिमानिर् रहीम' लिखते थे—इत्यादि।

पाठकों को यह भी ध्यान में रखना बहुत आवश्यक है कि श्री स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश को सत्य-सत्य अर्थ प्रकाश करने के विचार से लिखा है। वह चाहते थे कि मुसलमानों में भी सत्य ज्ञान का प्रचार हो। यही कारण था कि अनेक स्थानों पर उन्होंने इस्लाम के विषय में व्याख्यान दिये और यही कारण है कि चौदहवें समुल्लास के अन्तिम भाग में उनका कथन इस प्रकार है—

"यह तो बहुत थोड़ा-सा दोष प्रकट किया इसलिए कि लोग धोखे में पड़कर अपना जन्म व्यर्थ न गमावें। जो इसमें थोड़ा-सा सत्य है वह वेदादि विद्या पुस्तकों के अनुकूल होने से जैसे मुझको ग्राह्य है वैसे अन्य भी मज़हब के हठ और पक्षपात रहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है।"

कब लिखा गया—नवम्बर सन् १८७८ ई० में हिन्दी में कुरान तैयार हुआ था। सन् १८८३ ई० में श्री स्वामीजी महाराज स्वर्गलोक को सिधारे थे। फलतः इसी काल के बीच में चौदहवाँ समुल्लास लिखा गया है। परन्तु समीक्ष्य पद ८० की समीक्षा में जो शब्द हैं उनके कुछ शब्दों से भी इस बात का कुछ न कुछ पता चलता है कि चौदहवाँ समुल्लास कब लिखा गया है—देखिये समीक्षक के कुछ शब्द यह हैं—

"क्योंजी आजकल रूस से रुम आदि और इंग्लैण्ड ने मिश्र की दुर्दशा कर डाली फरिश्ते कहाँ सो गये?" अब सब से पहले यह जानना चाहिये लि रूम से अभिप्राय टर्की राज्य से ही है। प्राचीन रोम

या रूम राज्य का एक भाग तुर्कों के अधिकार में है। इसी कारण टर्की का राज्य ही रूम का बोधक है। भारत के सुप्रसिद्ध मुसलमान विद्वान् मौलाना शिबली नोमानी ने सन् १८९२ ई० में टर्की, मिश्र व शाम देश का भ्रमण किया था। उनकी यात्रा-पत्री सन् १८९४ ई० में प्रथम बार मुफीद आम प्रेस आगरा में छपी है। उसका नाम है—'सफ़र नामः रूम व मिस्त्र व शाम'। यह उर्दू में है और उर्दू के अच्छे पुस्तकालयों में देखने को मिल सकती है।

स्वर्गीय मौलाना हाफ़िज अब्दुर्रहमान अमृतसरी ने सन् १८९८ ई० में इस्लामी देशों की यात्रा के निमित्त भारत से प्रस्थान किया था। उनकी यात्रा-पत्री उर्दू में 'सफ़र नामा बलाद इसलामिया' के नाम से सन् १९०५ ई० में लाहौर के मुफ़ीद आम नाम के प्रेस में छपकर प्रकाशित हुई है। इससे भी सिद्ध होता है कि रूम का अभिप्राय टर्की से है। निदान इस बात की पुष्टि अनेक अन्य ग्रन्थों से हो सकती है कि रूम से अभिप्राय टर्की से ही है।

अंग्रेजी में 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' नाम का एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका चौदहवाँ संस्करण १९२९ ई० में अमरीका के संयुक्त राज्य में छपा है। इस अपूर्व ग्रन्थ के बाईसवें भाग के पृष्ठ ५८८ से टर्की (Turkey) का वर्णन आरम्भ होता है और पृष्ठ ६११ से पता चलता है कि रूस ने टर्की के विरुद्ध २४ अप्रैल सन् १८७७ ई० को युद्ध ठाना था। सन् १८७८ ई० में १३ जुलाई को विरोध का अन्त हुआ था।

उक्त अपूर्व ग्रन्थ के आठवें भाग में पृष्ठ ३३ पर मिस्त्र अर्थात् इजिप्ट (Egypt) का वर्णन आरम्भ है और पृष्ठ ९३ से विदित होता है कि इंग्लैण्ड (व फ्रांस) ने सन् १८७९ ई० में मिस्त्र पर अपना अधिकार जमाया था और इंग्लैण्ड व मिस्त्र के बीच में जैसा उक्त सन् तथा उसके पहले व बाद में भी सम्बन्ध रहा है उसका उल्लेख भी पृष्ठ ९३ के पहले व बाद में बहुत कुछ मिलता है।

मैंने तो उक्त ग्रन्थ का उल्लेख विशेष रूप से इस कारण किया है कि उक्त अपूर्व ग्रन्थ प्रत्येक बड़े पुस्तकालय में सुगमता के साथ देखा जा सकता है परन्तु रूस व रूम और इंग्लैण्ड व मिस्त्र से सम्बन्ध रखने वाली बातें अन्य ग्रन्थों में भी देखी जा सकती है और

इनसे इस बात पर कुछ न कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है कि चौदहवें समुल्लास के लिखे जाने की नौबत कब आई थी।

चौदहवें समुल्लास के रचना-काल के विषय में अब तक जो कुछ लिखा गया है मेरे विचार से उससे परिणाम यह निकलता है कि सन् १८७५ ई० के आरम्भ काल या उससे कुछ ही पहिले चौदहवाँ समुल्लास किसी न किसी रूप में लिखा गया था। उसी समय की सामग्री संशोधित व सम्बन्धित होकर सन् १८८४ ई० के संस्करण में शामिल हुई थी।

ऋषि दयानन्द सरस्वती के स्थानान्तर में आगमन–प्रतिगमन की तिथि और तारीख

[मूललेखक—स्व० पं० श्री महेशप्रसादजी मौलवी आलिमफाजिल]
(संशोधक तथा परिवर्धक–युधिष्ठिर मीमांसक)

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
टंकारा	संवत् १८८१	सन् १८२४	सं० १९०३	सन् १८४६
सायला (शैला)	१९०३	१८४६	१९०३ श्रावण	१८४६ जु० अग०
कोट गंगारा (कोट कांगढ़)	,, श्रावण	,, जु० अग०	,, आश्विन	,, सि० अक्टू०
सिद्धपुर	,, आश्विन	,, सि० अक्टू०	,, कार्तिक	,, अक्टू० न०
१ अहमदाबाद[2]	,, कार्तिक	,, अक्टू० न०	,, ,,	,, ,, ,,
१ बड़ौदा	,, पौष	,, दिस०	१९०४	१८४७
१ चाणौद कर्णाली	१९०४	१८४७	,,	,,
व्यासाश्रम	,,	,,	१९०५	१८४८
सिनोर (छिनूर)	१९०५	१८४८	१९०६	१८४९
२ चाणोद कर्णाली	१९०६	१८४९	१९०७	१८५०
२ अहमदाबाद	१९०७	१८५०	१९०८	१८५१
१ आबू	१९०९	१८५२	१९११	१८५४
१ हरिद्वार	१९११ अन्त	१८५५ आदि	१९१२ आरम्भ	१८५५ मध्य
१ हृषीकेश	१९१२	,,	,,	,,
१ देहरादून	,,	,,	,,	,,

---

१. स्वर्गीय पं० श्री महेशप्रसादजी मौलवी आलिम फाजिल, प्रो० हिन्दू विश्वविद्यालय काशी ने 'स्वामी दयानन्द सरस्वती कहाँ और कब' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी, उसी का संशोधन परिवर्धन तथा तिथियों के साथ अंग्रेजी तारीखों का उल्लेख करके हम यहाँ दे रहे हैं। इससे ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित की अनेक भूलों का निराकरण होगा।

२. जिस स्थान पर ऋषि दयानन्द एक से अधिक बार गये, उसके नाम के पूर्व आगमन की संख्या दी गई है।

टिहरी	सं० १९१२ वैशाख	१८५५ अप्रै० मई	सं० १९१२ वैशाख	सन् १८५५ अप्रै० मई
१ श्रीनगर (गढ़वाल)	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
रुद्रप्रयाग	,, ज्येष्ठ	,, मई	,, ज्येष्ठ	,, मई
अगस्त्य मुनि की समाधि	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
शिवपुरी	,, अषाढ (प्र०[1])	,, जु०	,, भाद्र	,, अग० सि०
२ श्रीनगर (गढ़वाल)	,, भाद्र	,, सि०	,, ,,	सित०
१ गुप्तकाशी	,, भाद्र	,, सित०	,, ,,	सित०
गौरीकुण्ड	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
भीम गुफा	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०	,, आश्विन	,, सि० अक्टू०
त्रियुगीनारायण	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, अक्टू०
३ श्रीनगर (गढ़वाल)	,, ,,	,, अक्टू०	,, ,,	,, ,,
तुंगनाथ	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
१ ऊखीमठ	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
२ गुप्तकाशी०				
२ ऊखीमठ०				
जोशीमठ	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०
१ बद्रीनाथ	,, ,,	,, नव०	,, ,,	,, नव०
अलखनन्दा का स्रोत	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
वसुधारा	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
माना ग्राम के निकट	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
२ बद्रीनाथ०				
चिलकिया घाटी	,, अगहन	,, नव० दिस०	,, अगहन	,, नव० दिस०
रामपुर	,, ,,	,, दिस०	,, ,,	,, दिस०
काशीपुर	,, ,,	,, ,,	,, फाल्गुन	१८५६ फर० मार्च
१ मुरादाबाद	,, फाल्गुन	१८५६ फर० मार्च	,, ,,	,, ,, ,,
सम्भल	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ गढ़मुक्तेश्वर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ फर्रुखाबाद	,, चैत्र कृष्ण पक्ष	,, मार्च अप्रै०	,, चैत्र कृ०	,, मार्च अप्रै०
१ शृङ्गीरामपुर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ कानपुर	१९१३ ,, शुल्क[2] पक्ष	,, अप्रै०	१९१३ ,, शुक्ल	,, अप्रै०

१. जिस वर्ष मलमास के कारण एक नाम के दो महीने होंगे वहाँ (प्र) से प्रथम और (द्वि) से द्वितीय मास समझें।

२. आगे सर्वत्र 'कृ' से कृष्ण पक्ष और 'शु' से शुद्ध पक्ष समझें।

१ प्रयाग	,, श्रावण	,, जुला० अग०	,, श्रावण	,, जुला० अग०
१ मिर्जापुर	,, भाद्र	,, अग०	,, भाद्र	,, सित०
विन्ध्याचल	,, ,,	,, सित०	,, ,,	,, ,,
१ काशी	सं० १९१३ आश्विन कृ०	सन् १८५६ सितम्बर	सं० १९१३ आश्विन	सन् १८५६ सितम्बर
१ चर्णारगढ़ चण्डाल-गढ़ चुनार (गढ़)	,, ,, शु० २	,, अक्टू० १	१९१४ चैत	१८५७ मार्च अप्रै०
नर्मदा का स्रोत	१९१४ ज्येष्ठ	१८५७ मई जून	१९१६	१८५९
१ हाथरस	१९१७ कार्तिक	१८६० अक्टू० न०	१९१७ कार्तिक	१८६० नव०
१ मुरसान	,, ,,	,, नवम्बर	,, ,,	,, ,,
१ मथुरा	१९१७ कार्तिक	१८६० नव०	१९२० वैशाख	१८६३ अप्रै० मई
१ आगरा	१९२० वैशाख	१८६३ अप्रै० मई	१९२१ आश्विन	१८६४ सि० अक्टू०
धौलपुर	१९२१ कार्तिक	१८६४ अक्टू० नव०	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०
१ ग्वालियर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ आबू[१]	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ ग्वालियर	,, माघ कृ० १२	१८६५ जन० २५ मं०	१९२२ वै० शु १२, १३	१८६५ मई ७, ८ र. सो.
करौली	१९२२ ज्येष्ठ	,, मई जून	,, आश्विन	,, सि० अक्टू०
खुशहालगढ़ (गंगापुर)	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०
१ जयपुर	,, ,,	,, ,, ,,	,, चैत्र कृ० ५	१८६६ मार्च ६ मं०
१ बगरू	,, चैत्र कृ०	१८६६ मार्च	,, ,, कृ०	,, मार्च
१ दूदू	,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,
१ कृष्णगढ़ (किशनगढ़)	,, ,,	,, ,,	१९२३ ,, शु०	,, ,,
१ अजमेर	१९२३ ,, शु०	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,
१ पुष्कर	,, ,, ,,	,, ,,	,, ज्येष्ठ (द्वि०)	,, मई जून
२ अजमेर	,, ज्येष्ठ द्वि०)	,, मई जून	,, ,, ,,	,, ,, ,,
२ कृष्णगढ़	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,
२ दूदू	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,
२ बगरू	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,
२ जयपुर	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०

१. आबू जाना सन्दिग्ध है। यु० मी०।

२ आगरा	,, कार्तिक कृ०	,, अक्टू०	,, मार्गशीर्ष	,, नव० दिस०
१ मेरठ	,, ,,	,, ,, ,,	,, फाल्गुन	१८६७ फर० मार्च
१ हरिद्वार	,, फाल्गुन शु० १	१८६७ मार्च १	१९२४ वैशाख	,, अप्रै० मई
१ हृषीकेश	१९२४ वैशाख	,, अप्रै० मई	,, ,,	,, ,, ,,
३ हरिद्वार	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
कनखल	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
लण्ढौरा	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
शुकताल	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
मीरांपुर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
मुहम्मदपुर	सं० १९२४ वैशाख	सन् १८६७ अप्रै० मई	सं० १९२४ वैशाख	सन् १८६७ अप्रै० मई
परीक्षितगढ़	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ गढ़मुक्तेश्वर०				
१ चासी	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ कर्णवास	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ रामघाट	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ सोरों	,, ज्येष्ठ	,, मई जून	,, ज्येष्ठ	,, मई जून
पटियाली	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ कम्पिल	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ कायमगंज	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
शमसाबाद	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ फर्रुखाबाद	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ अनूप शहर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ गढ़मुक्तेश्वर (की ओर)	,, ,,	,, ,, ,,	,, आषाढ़ (आरंभ)	,, ,, ,,
२ अनूपशहर	,, आषाढ़	,, जून जुलाई	,, ,,	,, जून जुलाई
२ चासी	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ ताहीरपुर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ कर्णवास	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ रामघाट	,, ,, शु० ५	,, जुलाई ६ शनि	,, ,, शु०	,, जुलाई
३ कर्णवास	,, ,, शु०	,, जुलाई	,, भाद्र	,, अग० सित०
३ रामघाट	,, भाद्र	,, अग० सि०	,, ,,	,, ,, ,,
४ कर्णवास	,, ,,	,, ,, ,,	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०
अहार	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०

३ चासी	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ ताहीरपुर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ९ ,,
३ अनूपशहर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, (अन्त)	,, नव०
५ कर्णवास	,, ,, (अन्त)	,, नव०	० मार्गशीर्ष	,, नव० दि०
४ रामघाट	,, मार्गशीर्ष	,, नव० दिस०	,, ,,	,, ,, ,,
१ अतरौली	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
बेलोन	८ ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
६ कर्णवास	,, ,,	,, ,, ,,	,, फाल्गुन कृष्ण	१८६८ फर०
४ अनूपशहर	,, फाल्गुन कृ०	१८६८ फर०	,, फाल्गुन शुक्ल	,, मार्च
६ रामघाट	,, ,, शुल्क	,, मार्च	,, ,, ,,	,, ,,
कछिलाघाट	,, ,, ,,	,, ,,	, चैत कृष्ण	,, ,,
गढ़ियाघाट	१९२५ चैत शु०	,, अप्रैल	१९२५ ,, शुक्ल	,, अप्रैल
२ सोरों	सं० १९२५ चैत्र शु०	सन् १८६८ अप्रैल	सं० १९२५ वैशाख	सन् १८६८ अप्रै० मई
(अम्बागढ़)	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
७ कर्णवास	,, ज्येष्ठ कृष्ण	,, मई	,, कार्तिक	,, अक्टूबर
३ सोरों	,, कार्तिक	,, अक्टू०	,, ,,	,, ,,
(अम्बागढ़)	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
सरावल	,, कार्तिक	,, अक्टू०	,, कार्तिक	,, अक्टूबर
शाहबाजपुर	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
कादिरगंज	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
१ नरदौली	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
ककोड़ा	,, ,, शु० १३	,, अक्टू० २९ गुरु	,, मार्ग० कृ० १०	,, नव० ९ सोम
२ नरदौली	,, मार्ग० कृ० १०	,, नव० ९ सोम	,, ,, ,, ११	७ ,, १० मं०
२ कायमगंज	,, ,, ,, ११	,, ,, १० मं०	,, ,, शु०	,, नव०
२ कम्पिल	,, ,, शु०	,, नव०	,, पौष	,, दिस०
शुकरुल्लापुर	,, पौष	,, दिस०	,, ,,	,, ,,
३ फर्रुखाबाद	,, ,,	,, ,,	१९२६ ज्येष्ठ	१८६९ मई जून
२ शृङ्गीरामपुर	१९२६ ज्येष्ठ	१८६९ मई जून	,, ,,	,, ,, ,,
जलालाबाद	,, ,,	,, जून	,, ,,	,, जून
कन्नौज	,, आषाढ़	,, जून जुला०	,, आषाढ़	,, जून जुलाई
बिठूर	,, ,,	,, जुलाई	,, ,,	,, जुलाई
मदारपुर	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
२ कानपुर	,, ,,	,, ,,	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०
शिवराजपुर	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०	,, ,,	,, ,, ,,

२ प्रयाग	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
रामनगर	,, ,,	,, ,, ,,	,, कार्तिक कृ० २, ३ (?)	,, अक्टू० २२, २३ २२,२३ (?)
२ काशी	,, कार्तिक कृ० २, ३	,, अक्टू० २२,२३	,, मार्गशीर्ष	,, नव० दिस०
२ मिर्जापुर	,, मार्गशीर्ष	,, नव० दिस०	,, माघ	१८७० जन० फरवरी
३ प्रयाग	,, माघ शु० ५	१८७० फर० ५ शनि	,, फाल्गुन	,, फरवरी मार्च
३ मिर्जापुर	,, फाल्गुन	,, फर० मार्च	१९२७ चैत शु०	,, अप्रैल[1]
मथुरा[1]	... ...	... ...	... ...	... ...
काशी[1]	... ...	... ...	... ...	... ...
३ काशी	१९२७ चैत शु०	१८७० अप्रैल	१९२७ ज्येष्ठ	१८७० मई जून
४ सोरों	,, ज्येष्ठ	,, मई जून	,, ,,	,, ,, ,,
१ कासगंज	,, ,,	,, ,, ,,	,, आश्विन[2]	,, सित० अक्टू०
[४ फर्रुखाबाद[3]	सं० १९२७ भाद्र	सन् १८७० अग० सित०	सं० १९२७ भाद्र	सन् १८७० अग० सित०]

१. इसी काल के मध्य में पाठशाला में पढ़ाने के लिये मथुरा जाकर पं० युगलकिशोर को लाने तथा काशी जाकर आवश्यक ग्रन्थ लाने का वर्णन पं० श्री देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ १९३ पर मिलता है।

२. इसी बीच में ऋषि दयानन्द कुछ दिनों के लिये फर्रुखाबाद भी गये थे। देखो अगले पृष्ठ की पहली टिप्पणी।

३. फर्रुखाबाद के इतिहास पृष्ठ १२२ पर सं० १९२८ के भाद्र मास में फर्रुखाबाद जाने का उल्लेख है। उसी वर्णन में मिर्जापुर की पाठशाला से पं० युगलकिशोर को बुलाने का वर्णन भी है। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पूर्ण सं० २ पृ० ४ के पत्र से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने पं० गंगादत्त को फर्रुखाबाद बुलाने के लिये सं० १९२७ भाद्र शु० ६ बृहस्पतिवार को पत्र लिखा था। ऋ० द० के जीवन चरित (पं० देवेन्द्र सं० पृ० १९६) में लिखा है कि कासगंज की पाठशाला के लिये फर्रुखाबाद की पाठशाला के अध्यापक दुलाराम (दिनेशराम) को बुलाया था। इससे स्पष्ट है कि जब फर्रुखाबाद की पाठशाला में कोई अध्यापक नहीं रहा और मथुरा से गंगादत्त शर्मा भी नहीं आये, तब उसी समय (भाद्र सं० १९२७) पं० युगलकिशोर को मिर्जापुर से बुलाया होगा। अत: फर्रुखाबाद के इतिहास में सं० १९२७ के स्थान में १९२८ भूल से छपा है, यह विस्पष्ट है। पाठक सुधार लें। फर्रुखाबाद के इतिहास के आधार पर ही पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृ० २०६ पर पं० घासीरामजी एम० ए० से भी यही भूल हुई है। ऋषि दयानन्द सं० १९२८ के मार्गशीर्ष में पुन: फर्रुखाबाद पधारे थे, इसका वर्णन फर्रुखाबाद के इतिहास में नहीं है। इसी प्रकार सं० १९१२ चैत कृष्ण में फर्रुखाबाद पधारने का उल्लेख भी उक्त इतिहास में नहीं है। इसी प्रकार सं० १९१२ चैत कृष्ण में फर्रुखाबाद पधारने का उल्लेख भी उक्त इतिहास में नहीं है। इन दोनों वारों का वर्णन जोड़ने पर ऋ० द० फर्रुखाबाद ९ बार पधारे, अगले चरित लेखक भूल ठीक करें।

बिलराम	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०
चकेरी (के निकट)	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
हरनोट	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
७ रामघाट	,, ,,	,, सि० अक्टू०	,, ,,	,, सि० अक्टू०
५ अनूपशहर	,, ,,	,, ,, ,,	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०
८ रामघाट	,, कार्तिक पूर्णिमा	,, नव० ८ मं०	,, मार्गशीर्ष	,, नव०
४ चासी	,, मार्ग०	,, नव०	,, ,,	,, ,,
९ रामघाट	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
१ छलेसर	,, ,, कृ० ४,५	,, नव० १२,१३ श०र०	,, पौष कृ० १	,, दिस० ९ शुक्र
२ अतरौली	,, पौष	,, दिस०	,, पौष	,, दिस०
बिजौली	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
५ सोरों	,, ,,	,, ,,	,, चैत्र कृ०	१८७१ मार्च
२ कासगंज	,, चैत्र कृ०	१८७१ मार्च	१९२८ चैत्र शु०	,, अप्रैल
[1][... ...	... ...	... ...	... ...	... ...]
[1][... ...	... ...	... ...	... ...	... ...]
१० रामघाट	१९२८ ज्येष्ठ	१८७१ मई जून	१९२८ आषाढ़	१८७१ जून जुलाई
[2][... ...	... ...	... ...	... ...	... ...]
[2][... ...	... ...	... ...	... ...	... ...]
८ कर्णवास	१९२८ भाद्र (द्वि०)	१८७१ सित०	१९२८ भाद्र (द्वि०)	१८७१ सित०
६ अनूपशहर	सं० १९२८ भद्रा (द्वि०) शु० १४	सन् १८७१ सित० ७ बु०	सं० १९२८ कार्तिक	सन् १८७१ नव०
९ कर्णवास	,, कार्तिक	,, नव०	,, मार्गशीर्ष	,, दिस०
५ फर्रुखाबाद[3]	,, मार्गशीर्ष	,, दिस०	,, माघ	१८७२ जनवरी फर०
४ काशी	,, फाल्गुन	१८७२ फर० मार्च	१९२९ चैत्र शु० ९	,, अप्रैल १६ मं०
मुगलसराय	१९२९ चैत्र शु० ९	,, अप्रैल १६ मं०	,, वैशाख कृ०[4]	,, अप्रैल[4]
१ डुमरांव	,, वैशाख कृ०[4]	,, अप्रैल[4]	,, भाद्र कृ०	,, अग०

---

१. कासगंज से चैत्र शु० १९२८ में प्रस्थान किया, तत्पश्चात् ज्येष्ठ में रामघाट पहुँचने का उल्लेख है। इस बीच में श्री स्वामीजी महाराज कहाँ-कहाँ रहे, यह अज्ञात है

२. रामघाट से आषाढ़ में प्रस्थान किया, तत्पश्चात् कर्णवास भाद्र (द्वितीय) में पहुँचे। इस बीच में तीन मास कहाँ-कहाँ भ्रमण किया, यह अज्ञात है।

३. इस बार फर्रुखाबाद पधारने का उल्लेख फर्रुखाबाद के इतिहास में नहीं है। देखो पूर्व पृष्ठ ४१ टिप्पणी पहली।

४. पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ २१० के अनुसार मुगलसराय में केवल १० दिन रहे। तदनुसार २६ अप्रैल को डुमरांव गये होंगे।

१ आरा	,, भाद्र कृ०	,, अगस्त	,, ,, शु० ३,४	,, सि० ६,७ शु०श०
१ पटना	,, ,, शु० ३,४	,, सि० ६,७ शु० श०	,, आश्विन कृ० ३०	,, अक्टू० २ बुध
मुंगेर	,, आश्विन शु० १	,, अक्टू० ३ गु०	,, कार्तिक कृ० २[१]	,, अक्टू० १८ शु०
१ भागलपुर	,, कार्तिक कृ० ४[१]	,, अक्टू० २० र०	,, पौष कृ० १	,, दिस० १५ र०
कलकत्ता	,, पौष कृ० २	,, दिस० १६ सो०	,, ,,[२]	१८७३ जन० ३१ शु०[३]
मुर्शिदाबाद वालूचा	,, ,,[२]	१८७३ फर० १ श०	,, ,,[२]	,, फरवरी २१ शु०
कलकत्ता	,, ,,[२]	,, फरवरी २२ श०	,, ,,[२]	,, मार्च १२ बु०
नवद्वीप	,, ,,[२]	,, मार्च १३ बृ०	,, ,,[२]	,, मार्च १९ बु०
वराह नगर (कलकत्ता का उपनगर)	,, ,,[२]	,, मार्च १९ बु०	१९३० चैत शु० ४	,, अप्रैल १ मं०
हुगली	१९३० चैत शु० ४	,, अप्रैल १ मं०	,, ,, शु० १४[४]	,, अप्रैल १२ शनि
वर्दमान	,, ,, शु० १५	,, ,, १३ र०	,, वैषाख कृ० ४	,, ,, १६ बुध
२ भागलपुर	,, वैशाख कृ० ५	,, ,, १७ गु०	,, ज्येष्ठ कृ० ५	,, मई १७ शनिवार
२ पटना	,, ज्येष्ठ कृ० ६	,, मई १८ रवि	,, ,, कृ०	,, मई
छपरा	,, ,, कृ० १४	,, ,, २५ रवि०	,, ,, शु० १५	,, जून १० मंगल
२ आरा	,, आषाढ़ कृ० १	,, जून ११ बुध	,, श्रावण शु० २	,, जुला० २६ श०
२ डुमरांव	सं० १९३० श्रावण शु० २	सन् १८७३ जुलाई २६ श०	सं० १९३० श्रा० शु० १५	सन् १८७३ अग० ८ शु०

१. यहाँ कुछ भूल प्रतीत होती है। मुंगेर से भागलपुर का मार्ग थोड़े समय का है, दो दिन का नहीं। अथवा मार्ग में कहीं अन्यत्र रुके होंगे।

२. इस समय हमारे पास संवत् १९२९ का पञ्चाङ्ग नहीं है। इसलिए तारीख के अनुसार तिथि नहीं देखे।

३. जीवन-चरितों में इस दिन कलकत्ता छोड़ने का तथा पुनः कलकत्ता आने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार मुर्शिदाबाद-बालूचा आदि जाने का भी उल्लेख नहीं है। हुगली से रवाना होने तथा वर्दमान पहुँचने की भी कोई तारीख नहीं लिखी है। इन ४-५ मास की तारीखों का उल्लेख हमने श्री हेमचन्द्रजी चक्रवर्ती (प्रचारक आदि ब्रह्म समाज) की डायरी के अनुसार किया है। डायरी का वह अंश जो ऋषि के जीवन-चरित से सम्बन्ध रखता है, ज्येष्ठ सं० २०१२ की वेदवाणी में छप चुका है। परन्तु उसके बहुत महत्त्वपूर्ण होने से हम उसे इस परिशिष्ट के अन्त में भी छाप रहे हैं।

४. चैत शु० ११ रदनुसार ८ अप्रैल मंगलवार को पं० ताराचन्द्र से शास्त्रार्थ हुआ था। देखो ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन (द्वि० संस्क०) पृष्ठ ६ पं० २४ तथा उसकी टिप्पणी २।

५ मिर्जापुर	,, ,, शु० १५	,, अग० ८ शु०	,, कार्तिक कृ०	,, अक्टूबर
५ प्रयाग	,, कार्तिक कृ०	,, अक्टूबर	,, ,, ,,	,, ,,
३ कानपुर	,, ,, कृ० १४	,, अक्टू० २० सो०	,, मार्गशीर्ष कृ०	,, नव०
१ लखनऊ	,, मार्गषीर्ष कृ०	,, नव०	,, ,, कृ० १४	,, नव० १९ बुध
४ कानपुर	,, ,, कृ० ३०	,, नव० २० बृ०	,, ,, कृ० ३०	,, नव० २० बृ०
५ फर्रुखाबाद	,, ,, शु० १	,, ,, २१ शु०	,, पौष कृ०	,, दिसम्बर
३ कासगंज	,, पौष कृ० ६	,, दिस० १२ बु०	,, ,, ,,	,, ,,
३ अतरौली	,, ,, कृ० ३०	,, दिस० १९ शु०	,, ,, कृ० ३०	,, दिस० १९ शु०
२ छलेसर	,, ,, शु० १	,, दिस० २० श०	,, ,, शु० ७	,, दिस० २६ शु०
१ अलीगढ़	,, ,, शु० ७	,, दिस० २६ शु०	,, माघ शु० ५	१९७४ जन० २२ बृ०
२ हाथरस	,, माघ शु० ५	१९७४ जन० २२ बृ०	,, ,, शु०	,, जन०
३ मथुरा	,, ,, शु०	,, जन०	,, फाल्गुन शु० ११	,, फर० २७ शु०
वृन्दावन	,, फाल्गुन शु० ११	,, फर० २७ शु०	,, चैत्र कृ० ११	,, मार्च १४ श०
४ मथुरा	,, चैत्र कृ० ११	,, मार्च १४ श०	१९३१ ,, शु० २	,, मार्च २० शु०
२ मुरसान	१९३१ चैत्र शु० २	,, मार्च २० शु०	,, ज्येष्ठ	,, मई
६ प्रयाग	,, ज्येष्ठ	,, मई	,, ,,	,, ,,
५ काशी	,, ,,	,, ,,	,, आषाढ़ (द्वितीय)	,, जून
७ प्रयाग	,, आषाढ़ (द्वि०) कृ० २	,, जुलाई १ बु०	,, आश्विन	,, अक्टू०
जबलपुर	,, आश्विन	,, अक्टू०	,, ,,	,, ,,
नासिक (पंचवटी)	,, ,, शु०	,, ,,	,, ,, शु०	,, ,,
१ बम्बई	,, कार्तिक कृ० १	,, ,, २० सो०	,, मार्गशीर्ष कृ० ८	,, दिस० १ मं०
१ सूरत	,, मार्गशीर्ष कृ० ८	,, दिस० १ मं०	,, मार्गशीर्ष	,, दिस०
१ भड़ौंच	,, मार्गशीर्ष	,, दिस०	,, ,,	,, ,,
३ अहमदाबाद	,, ,, शु० ३	,, दिस० ११ श०	,, पौष कृ० ५	,, दिस० २८ सो०
निम्राद (नडियाद)	,, पौष कृ०	,, दिस०	,, पौष कृ०	,, दिस०
राजकोट	,, पौष कृ० ८	,, दिस० ३१ बृ०	,, ,, शु० १२	१८७५ जन० १८ सो०
चोटिला[1]	,, ,, कृ० १२ की रात	१८७५ जन० १८ सो०	,, ,, ,, १३ प्रातः	,, ,, १९ मं० प्रातः

१. चोटिला, राजकोट और बड़ोयान (बढवाण) के मध्य में राजकोट से १३-१४ मील पर है, यहाँ जाने का उल्लेख राजकोट के वर्णन के आस-पास किसी जीवन-चरित में नहीं मिलता, परन्तु पं० देवेन्द्रनाथ ने (प्रारम्भिक चार अध्याय उनके ही लिके हुए हैं) राजकोट से बड़ोयान जाते हुए मार्ग में १ रात चोटिला ठहरने का उल्लेख किया है। देखो—पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० चरित्र पृष्ठ १३।

बड़ोयान (बढवाण)	,, पौष शु० १३	,, जन० १९ मं०	,, पौष शु० १४	,, जनवरी २० बुद
४ अहमदाबाद	,, ,, ,, १५[1]	,, जन० २१ शु०	,, माघ कृ० ८	,, जनवरी २९ शु०[2]
२ बम्बई	सं० १९३१ माघ कृ० ८	सन् १८७५ जन० २९ शु०	सं० १९३२ आषाढ़ कृ०	सन् १८७५ जून
१ पूना	१९३२ आषाढ़ कृ०	,, जून	,, भाद्र शु०[3]	,, सित०[3]
सातारा	,, भाद्र शु०[4]	,, सित०[4]	,, आश्विन[5] शु०	,, अक्टू०[5]
२ पूना[6]	,, आश्विन शु०[5]	,, अक्टू०[5]	,, कार्तिक कृ०[7]	,, अक्टू०[7]
३ बम्बई	,, कार्तिक कृ०[7]	,, अक्टू०[7]	,, पौष	१८७५ दिसम्बर १८७६ जनवरी

१. किसी-किसी पंचांग में इस दिन माघ कृष्ण १ भी लिखा है।

२. पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवन चरित पृष्ठ ३२१ में २१ जनवरी को अहमदाबाद आने का उल्लेख है। पुनः पृष्ठ ३२२ पर २७ जनवरी को अहमदाबाद में होने वाली विशेष सभा का उल्लेख किया है। तदनन्तर पृष्ठ ३२६ पर अहमदाबाद से दुबारा सूरत आने और १ व्याख्यान देने का वर्णन है। तत्पश्चात् इसी पृष्ठ पर सूरत से बालसर (बलसाढ) जाने तथा पृष्ठ ३२७ में बालसर (बलसाढ) से बसीनरोड जाने और ४ चार दिन वहाँ ठहरने का कथन करके पृ० ३२८ पर २९ जनवरी को बम्बई पहुँचने का वर्णन किया है। २७ जनवरी तक अहमदाबाद रहना और २९ जन० को बम्बई पहुँचने से पूर्व सूरत बालसर तथा ४ दिन बसीनरोड ठहरना किसी प्रकार सम्भव नहीं। इस वर्णन में कुछ भूल अवश्य है। अगले चरित लेखक इस पर ध्यान देवें। सम्भव है वह अगली बार अहमदाबाद से लौटते समय का वर्णन हो।

३. पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ३५७ पर इतना ही उल्लेख है—"पूना से स्वामीजी सितम्बर १८७५ की किसी तारीख को सातारा चले गये।" इसी जी० च० में पृ० ३५१ पर पूना से विदाई के उपलक्ष्य में ५ सितम्बर १८७५ रविवार तदनुसार भाद्र शु० ५ सं० १९३२ को समारोह तथा सभा करने का उल्लेख है। इससे विदित होता है कि ऋ० द० ५ सितम्बर के एक दो दिन के भीतर ही सातारा चले गये होंगे।

४. इस विषय में इसी पृष्ठ की ३ चिह्नित पूर्व टिप्पणी देखें।

५. पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ३५७ पर २३ अक्टूबर तदनुसार कार्तिक कृ० १ को सातारा से पूना लौटने का वर्णन है, वह अशुद्ध है, क्योंकि गुजराती पंचाङ्गानुसार आश्विन वदी २ (उत्तर भारतीय पंचाङ्गानुसार—कार्तिक वदि २) तदनुसार १६ अक्टूबर को लिखे गये पूर्ण संख्या १८ के पत्र में सातारा से लौट आने का निर्देश है। यह पत्र पूना से लिखा गया या बम्बई से, यह पत्र से स्पष्ट नहीं है। हमारे विचार में यह पत्र पूना से लिखा गया है और २३ अक्टूबर तारीख पूना से बम्बई जाने की प्रतीत होती है। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन द्वितीय संस्क० पृष्ठ ३० की टिप्पणी २ भी देखें।

६. पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ३५६ में प्रथम वार के पूना वर्णन के प्रसंग में आर्यसमाज की स्थापना का उल्लेख है। परन्तु पूर्ण संख्या १८ के पत्रानुसार द्वितीय बार पूना निवास काल में समाज की स्थापना हुई थी। देखो ऋ० द० पत्र वि० पृष्ठ ३०।

७. यहाँ इसी पृष्ठ की ५ चिह्न से चिह्नित पूर्व टिप्पणी देखें।

२ बड़ौदा	,, पौष	१८७५ दिसम्बर १८७६ जनवरी	,, फाल्गुन	१८७६ फर० मार्च
५ अहमदाबाद	,, फाल्गुन	१८७६ फर० मार्च	,, ,,	,, ,, ,,
२ भडौंच	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ सूरत	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
बलासार	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
बसीनरोड	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
४ बम्बई	,, ,,	,, ,, ,,	१९३३ वैशाख	,, अप्रैल
१ इन्दौर	१९३३ वैशाख	सन् १८७६ अप्रैल	सं० १९३३ वैशाख शु० ७	सन् १८७६ अप्रैल ३० र०
७ फर्रुखाबाद	,, ज्येष्ठ कृ० १	,, मई ९ मंगल	,, ज्येष्ठ शु० १	,, मई २४ बुध
६ काशी	,, ,, शु० ४	,, मई २७ शु०	,, भाद्र कृ० १०,११	,, अग० १४, १५ सो० मं०
जौनपुर	,, भाद्र कृ० ११	,, अग० १५ मं०	,, ,, कृ० १४	,, अग० १८ शु०
अयोध्या	,, ,, कृ० १४	,, अग० १८ शु०	,, आश्विन शु० ९	,, सित० २७ बु०
२ लखनऊ	,, आश्विन शु० ९	,, सित० २७ बु०	,, कार्तिक शु० १५	,, नव० १ बुध
१ शाहजहाँपुर	,, कार्तिक शु० १५	,, नव० १ बु०	,, मार्गशीर्ष कृ० ५	,, नव० ६ सोम
१ बरेली	,, मार्गशीर्ष कृ० ५	,, नव० ६ सोम	,, ,, शु०[1]	,, नव०
२ मुरादाबाद	,, ,, शु०	,, नव०	,, ,, ,,	,, ,,
२ बरेली	,, ,, ,,	,, ,,	,, पौष कृ० १	,, दिस० २ श०
राजघाट	,, पौष कृ० १	,, दिस० २ शनि	,, ,, कृ०	,, ,, ,,
१० कर्णवास	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, कृ० ३	,, दिस० ४ सो०
३ छलेसर	,, ,, कृ० ३	,, दिस० ४ सो०	,, ,, कृ०	,, दिस०
२ अलीगढ़	,, ,, कृ०	,, दिस०	,, पौष शु० २	,, दिस० १७ र०
१ दिल्ली	,, ,, शु० २	,, दिस० १७ र०	,, माघ शु० २	१८७७ जन० १६ मं०
२ मेरठ	,, माघ शु० २	१८७७ जन० १६ मं०	,, फाल्गुन शु० २	,, फर० १५ वृ०
१ सहारनपुर	,, फाल्गुन शु० २	,, फरवरी १५ बृ०	,, चैत्र कृ० १२	,, मार्च ११ र०
२ शाहजहाँपुर	,, चैत्र कृ० १४	,, फरवरी १३ मं०	,, ,, कृ० ३०	,, मार्च १५ बृ०
चांदापुर	,, चैत्र कृ० ३०	,, मार्च १५ बृ०	१९३४ चैत्र शु० ८	,, मार्च २२ बृ०

1. १८ नव० मार्ग० शु० २ का बरेली से भेजा हुआ पत्र ऋ० द० पत्र वि० पूर्ण सं० २४ पृ० ३२ पर छपा है।

३ शाहजहाँपुर	१९३४ चैत्र शु० ८	,, मार्च २२ बृ०	,, शु० ९	,, मार्च २३ शु०
२ सहारनपुर	,, ,, शु०	,, मार्च	,, वैशाख कृ० २	,, मार्च ३१ श०
१ लुधियाना	,, वैशाख कृ० २	,,मार्च ३१ श०	,, ,, शु० ५[1]	,, अप्रैल १८ बु०[1]
१ जालन्धर	,, ,, शु० ५ (रात)	,, अप्रै० १८ बु०	,, ,, शु० ६ (प्रात:)	,, ,, १९ बृ०
१ लाहौर	,, ,, शु० ६	,, अप्रैल १९ बृ०	,, आशाढ़ शु० २[2]	,, जुलाई १२[2] बृ०
१ अमृतसर	,, आषा० शु० २[2]	,, जुलाई १२ बृ०[2]	,, श्रावण शु० ९	,, अग० १७ शु०
[लाहौर[3]	सं० १९३४ आषा० शु० १२ (सायं)	सन् १८७७ जु० २२ र०	सं० १९३४ आ० शु० १३ (प्रात:)	सन् १८७७ जु० २३ सो०]
गुरुदासपुर	,, श्रावण शु० ९	,, अग० १७ शु०	,, भाद्र कृ० २	,, अग० २८ र०
बटाला[4]	,, भाद्र कृ० २	,, ,, २८ र०	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,
२ अमृतसर	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,, ,, शु० ६	,, सित० १३ बृ०
२ जालन्धर	,, ,, शु० ६[5]	,, सित० १३ बृ०[5]	,, आश्विन शु० ८[6]	,, अक्टू० १५ सो०[6]
३ अमृतसर[6]	,, आश्विन शु० ९	,, अक्टू० १५ सो०	,, आश्विन शु० ११	,, अक्टू० १ बु०

१. यद्यपि जीवनों चरितों में वैशाख शु० ६ बृहस्पतिवार १९ अप्रैल को लुधियाना से लाहौर पधारना लिखा है, तथापि पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ४३७ में जालन्धर के वर्णन प्रसंग में लिखा है— लुधियाना से लाहौर जाते हुए एक रात के लिए जालन्धर ठहरे थे और सरदार सुचेतसिंह का आतिथ्य ग्रहण किया था। तदनुसार स्वामीजी लुधियाना से वैशाख शु० ५ अप्रैल १८ बुधवार को रवाना हुए होंगे।

२. पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ४२९ में ५ जुलाई १८७७=आषाढ़ कृष्ण ९ को अमृतसर पहुँचना लिखा है, परन्तु ऋ० द० के २१ जुलाई के पत्र (पूर्ण संख्या ३९ पृ० ५३) से स्पष्ट है कि वे १२ जुलाई=आषाढ़ शु० २ को अमृतसर पहुँचे थे। पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ४३० पर लिखा है—"१२ जुलाई सन् १८७७ रविवार को महाराज लाहौर गये और सन्ध्या समय अनारकली में आर्यसमाज में "धर्म की आवश्यकता" और "आर्यसमाज से लाभ" पर व्याख्यान देकर अमृतसर लौट आये।" यहाँ '१२ जुलाई रविवार' को लाहौर जाना अशुद्ध है, क्योंकि १२ जुलाई को बृहस्पतिवार था, रविवार १५ जुलाई और २२ जुलाई को था। अत: प्रतीत होता है, २२ जुलाई का यहाँ १२ जुलाई बन गया है।

३. इस विषय में पृष्ठ ४५ की ..... चिह्नित टिप्पणी देखो।

४. बटाला ठहरने का निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवन चरित पृ० ४३६ पर है।

५. ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पूर्ण संख्या ४८ (पृष्ठ ६७) के पत्र सारांश में १२ सितम्बर को जालन्धर पहुँचना लिखा है, वह भूल से लिखा गया प्रतीत होता है। क्योंकि इसी पत्र व्यवहार के पूर्ण संख्या ४३ (पृ० ६४) के पत्र में १३ सितम्बर को प्रात: ९/१-२ बजे की गाड़ी से जालन्धर जाने का निर्देश है। यही तारीख सभी जीवन चरितों में तथा शास्त्रार्थ जालन्धर में छपी है। शास्त्रार्थ जालन्धर पं० श्री लेखरामजी सं० जीवन चरित्र में अक्षरश: छपा है।

६. ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण संख्या ४९ (पृ० ६७: से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द १५ अक्टूबर सोमवार को प्रात: जालन्धर से अमृतसर के लिए रवाना हुए, वहाँ से १७ अक्टूबर बुधवार की प्रात: लाहौर के लिए प्रस्थान किया। इस प्रकार १५ का आधा दिन, १६ और १७ की प्रात: तक अमृतसर रहे। ऋ० द० के किसी भी जी० च० में अमृतसर के इस निवास का उल्लेख नहीं है।

२ लाहौर	,, आश्विन शु० ११	,, अक्टू० १७ बु०	,, कार्तिक कृ० ४	,, अक्टू० २६ शु०
फिरोजपुर	,, कार्तिक कृ० ४	,, अक्टू० २६ शु०	,, ,, कृ० १४	,, नव० ४ रवि
३ लाहौर	,, ,, कृ० ३०	,, नव० ५ सो०	,, ,, शु० २	,, नव० ७ बुध
रावलपिण्डी	,, ,, शु० ३	,, नव० ८ बृ०	,, पौष कृ० ७[१]	,, दिस० २६ बु०
झेलम	,, पौष कृ० ८[१]	,, दिस० २७ बृ०	,, ,, शु ९	१८७८ जन० १३ र०
गुजरात	,, ,, शु० ९	१८७८ जन० १३ र०	,, माघ कृ० ३०	,, फर० २ श०
वजीराबाद	,, माघ कृ० ३०	,, फर० २ श०	,, ,, शु० ५	,, फर० ७ बृ०
गुजरांवाला	,, ,, शु० ५	,, फर० ७ बृ०	,, फाल्गुन कृ० १४	,, मार्च ३ श०
४ लाहौर	,, फाल्गुन कृ० १४	,, मार्च ३ श०	,, ,, शु० ८	,, मार्च १२ मं०
मुलतान	,, ,, शु० ८	,, मार्च १२ मं०	१९३५ चैत्र शु० १४	,, अप्रैल १६ मं०
५ लाहौर	१९३५ चैत्र शु० १५	,, अप्रैल १७ बु०	,, वैशाख शु० १४	,, मई १५ बु०
४ अमृतसर	,, वैशाख शु० १४	,, मई १५ बु०	,, श्रावण कृ०	,, जुलाई
३ जालन्धर	,, श्रावण कृ०	,, जुलाई	,, ,, ,,[२]	,, ,,[२]
२ लुधियाना	सं० १९३५ श्रावण कृ०	सन् १८७८ जुलाई १३	सं० १९३५ श्रावण कृ०	सन् १८७८ जुलाई
अम्बाला	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,
१ रुड़की	,, ,, ,,	,, ,,	,, भाद्र कृ० ८	,, अग० २१ बु०
३ अलीगढ़	,, भाद्र कृ० ९	,, अग० २२ बृ०	,, भाद्र कृ० १३	,, अग० २६ सो०
३ मेरठ	,, भाद्र कृ० १३	,, अग० २६ सो०	,, आश्विन शु० ८	,, अक्टू० ३ बृ०
२ दिल्ली	,, आश्विन शु० ८[३]	,, अक्टू० ३ बृ०[३]	,, कार्तिक शु० १२	,, नव० ६ बु०

१. पं० श्री लेखरामजी ने ३० दिसम्बर को झेलम पहुँचना लिखा है। पं० श्री देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ४५० पर "३० दिसम्बर को महाराज रावलपिण्डी से गुजरात जाने के विचार से शिकरम पर सवार होकर ३१ दिसम्बर को झेलम रेलवे स्टेशन पर पहुँचे" ऐसा लिखा है। ये दोनों लेख अशुद्ध हैं। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण सं० ५७ के पत्र में ऋ० दयानन्द ने २७ दिसम्बर को झेलम पहुँचना लिखा है। देखो पृष्ठ ७५ तथा टि० २।

२. यहाँ से आगे की रुड़की पहुँचने तक की वास्तविक तिथियाँ अज्ञात है। पं० श्री लेखरामजी और पं० श्री देवेन्द्रनाथजी सं० जीवन चरितों में ११ जुलाई=आषाढ़ शु० १२ तक अमृतसर में निवास करने का उल्लेख है, परन्तु ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण संख्या ८२ (पृ० ९३) के पत्र से १५ जुलाई तक अमृतसर रहना निश्चित है। इसी प्रकार पूर्णसंख्या ८५ (पृ० ९५) के पत्र से स्पष्ट है कि वे २५ जुलाई को या उससे पूर्व वे रुड़की पहुँच गये थे।

३. पं० श्री लेखरामजी तथा पं० श्री देवेन्द्रनाथजी सं० जी० च० में ९ अक्टूबर को देहली पहुँचना लिखा है, वह अशुद्ध है। क्योंकि ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्णसंख्या १०९ (पृष्ठ १११ पं० ६) के पत्र में ऋ० द० ने 'हम ३ अक्टूबर को दिल्ली आ गये हैं' ऐसी स्पष्ट निर्देश किया है।

३ अजमेर	,, कार्तिक शु० १३	,, नव० ७ बृ०	,, ,, शु० १३	,, नव० ७ बृ०
२ पुष्कर	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, मार्गशीर्ष कृ० ४	,, नव० १४ बृ०
४ अजमेर	,, मार्गशीर्ष कृ० ४	,, नव० १४ बृ०	,, ,, शु० ८	,, दिस० २ सो०
१ मसूदा	,, ,, शु० ८	,, दिस० २ सो०	,, पौष कृ० १	,, दिस० १० मं०
१ नसीराबाद	,, पौष कृ० १	,, दिस० १० मं०	,, ,, कृ० ५	,, दिस० १४ श०
५ अजमेर[१]	,, ,, कृ० ५	,, दिस० १४ श०	,, ,, कृ० ६	,, दिस० १५ र०
३ जयपुर	,, ,, कृ० ६	,, दिस० १५ र०	,, ,, शु० १	,, दिस० २४ मं०
रिवाड़ी	,, ,, शु० २	,, दिस० २५ बु०	,, माघ कृ० १	१८७९ जन० ९ बृ०
३ दिल्ली	,, माघ कृ० १	१८७९ जन० ९ बृ०	,, ,, कृ० ९	,, जन० १६ बृ०
४ मेरठ	,, ,, कृ० ९	,, जन० १६ बृ०	,, ,, शु०	,, जन० फर०[२]
खतौली[३]	,, ,, शु०	,, जन० फर०	,, ,, ,,	,, जन० फर०
३ सहारनपुर	,, ,, शु०[२]	,, जन० फर०[२]	,, ,, शु० १५	,, फर० ६ बृ०[२]
२ रुड़की	,, ,, शु० १५[४]	,, फर० ६ बृ०[४]	,, फाल्गुन कृ० १४[५]	,, फर० २० बृ०[५]
ज्वालापुर	सं० १९३५ फाल्गुन कृ० १४	सन् १८७९ फर० २० बृ०	सं० १९३५ फा० शु० ६	सन् १८७९ फर० २७ बृ०
४ हरिद्वार	,, ,, शु० ६	,, फर० २७ बृ०	१९३६ वैशाख कृ० ८	,, अप्रैल १४ सो०
२ देहरादून	१९३६ वैशाख कृ० ८	,, अप्रैल १४ सो०	,, ,, शु० ९	,, अप्रैल ३० बु०

---

१. इस बार अजमेर ठहरने का उल्लेख किसी जी० च० में नहीं है। परन्तु सभी जीवन चरितों में १४ दिस० को नसीराबाद से चलना और १५ दिन को जयपुर पहुँचना लिखा है। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्णसंख्या १३७ (पृ० १२४) में लिखा है 'हम अजमेर से जयपुर आये थे'। इससे स्पष्ट है कि १४ दिन को अजमेर पहुँचे और १५ की किसी गाड़ी से जयपुर को रवाना हुए।

२. हरिद्वार के कुम्भ में जाते हुए मार्ग में खतौली के 'मजहर हसन उर्फ मजवां' के बाग में कुछ घण्टों के लिये ठहरे थे। यह अनुसन्धान श्री मामराजजी खतौली निवासी ने किया है।

३. ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पूर्णसंख्या १४३ (पृ० १३०) के अनुसार २ फरवरी को स्वामीजी सहारनपुर में विद्यमान थे। क्योंकि उक्त २ फरवरी का पत्र सहारनपुर से लिखा गया है, यह पत्र से स्पष्ट है। पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवन चरित पृ० ५१९ में सहारनपुर में 'केवल दो ही दिन ठहरे' लिखा है, यह भी अशुद्ध। उक्त पत्रानुसार फरवरी २ से ६ तक सहारनपुर अवश्य रहे थे।

४. देखो इसी पृष्ठ की ..... संकेतित सहारनपुर की टिप्पणी।

५. पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ५१९ में रुड़की में केवल १ दिन ठहरना लिखा है, परन्तु पूर्ण संख्या १४३ के २ फरवरी को सहारनपुर से लिखे गये पत्र में रुड़की में ८ वा १५ दिन रहने का उल्लेख है। इसी प्रकार उक्त जीवन चरित पृ० ५१९ में फाल्गुन शु० ६ अर्थात् २० फरवरी को ज्वालापुर पहुँचने का निर्देश किया है। २० फरवरी को फा० कृ० १४ थी।

४ सहारनपुर	,, ,, शु० १०	,, मई १ बृ०	,, ,, शु० १२	,, मई ३ श०
५ मेरठ	,, ,, शु० १२	,, मई ३ श०	,, ज्येष्ठ शु० २	,, मई २३ शु०
४ अलीगढ़	,, ज्येष्ठ शु० २	,, मई २३ शु०	,, ,, शु० ७	,, मई २८ बु०
४ छलेसर	,, ,, ,, ७	,, मई २८ बु०	,, आषाढ़ शु० १५	,, जुलाई ३ बृ०
३ मुरादाबाद	,, आषाढ़ शु० १५	,, जुलाई ३ बृ०	,, श्रावण शु० १३[1]	,, ,, ३१ बृ०[1]
बदायूँ	,, श्रावण शु० १४	,, अग० १ शु०	,, भाद्र कृ० १२	,, अग० १४ बृ०
३ बरेली	,, भाद्र कृ० १२	,, ,, १४ बृ०	,, आश्विन कृ० ४	,, सित० ४ बृ०
४ शाहजहाँपुर	,, आश्विन कृ० ४	,, सित० ४ बृ०	,, ,, शु० १	,, सित० १८ बु०
३ लखनऊ	,, ,, शु० २	,, सित० १८ बृ०	,, ,, शु० ९	,, सित० २४ बु०
५ कानपुर	,, ,, ,, ९	,, सित० २४ बु०	,, ,, शु० ९	,, सित० २४ बु०
८ फर्रुखाबाद	,, आश्विन शु० १०	,, सि० २५ वृ०	,, आ० (द्वि०) कृ० ८	,, अक्टू० ८ बु०
६ कानपुर	,, ,, (द्वि०) कृ० ८	,, अक्टू० ८ बु०	,, ,, ,, शु० २	,, ,, १७ शु०
८ प्रयाग	,, ,, ,, शु० २[2]	,, ,, १७ शु०[2]	,, ,, ,, शु० ९	,, ,, २३ बृ०
६ मिर्जापुर	,, ,, ,, शु० ९	,, ,, २३ बृ०	,, ,, ,, शु० १५	,, ,, ३० वृ०
दानापुर	,, ,, ,, शु० १५	,, ,, ३० बृ०	,, कार्तिक शु० ७[3]	,, नव० २०[3] वृ०
७ काशी	,, कार्तिक शु० ७[3]	,, नव० २०[3] बृ०	१९३७ वैशाख कृ० ११	१८८० मई ५ बु०
४ लखनऊ	१९३७ वैशाख कृ० ११	१८८० मई ५ बु०	,, ,, शु० ११	,, मई १९ बु०
८ कानपुर	,, ,, शु० १०	,, मई १९ बु०	,, ,, शु० ११	,, मई २० वृ०

१. पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ५५० में ३० जुलाई को मुरादाबाद से प्रस्थान करने का उल्लेख किया है और ३१ की रात के ३ बजे बदायूँ पहुँचना लिखा है। ३१ की रात के १२ बजे के बाद १ अगस्त प्रारम्भ हो जाता है। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण संख्या १८० के अनुसार ३१ जुलाई को मुरादाबाद से प्रस्थान किया था।

२. पूर्णसंख्या १९३ ता० १२ अक्टू० १८७९ के पत्र (पृ० १६६) में १६ अक्टूबर को प्रयाग जाने का उल्लेख ऋ० द० ने किया है। सम्भव है १६ को न जाकर १७ को गये हों।

३. पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ५९२ पर १९ सितम्बर को दानापुर से प्रस्थान करना लिखा है, वहाँ २० सितम्बर होना चाहिये। भ्रमोच्छेदन ग्रन्थ के आरम्भ में ऋ० द० ने "कार्तिक सुदि १४ गुरुवार सं० १९३६ (=२७ नवम्बर १८७९) को काशी पहुँचना लिखा है, वह ठीक नहीं है, क्योंकि पत्र व्यवहार में पूर्णसंख्या १८९ पृष्ठ १६९ पर २० नवम्बर (कार्तिक शु० ७) का, पूर्णसंख्या १९९ पृष्ठ १७० पर कातिक शु० ८ (=२१ नवम्बर) का तथा पूर्णसंख्या २०० पृ० १७०, १७१ पर २४ नवम्बर (कार्तिक शु० ११) के काशी से भेजे गए पत्र छपे हुए हैं। अत: कार्तिक शु० ७=२० नवम्बर (या उससे एक दिन पूर्व) काशी पहुँचना ही उचित है।"

९ फर्रुखाबाद	,, ,, शु० ११	,, मई २० बृ०	,, आषाढ़ कृ० ८	,, जून ३० बु०
मैनपुरी	,, आषाढ़ कृ० ९	,, जु० १ बृ०	,, ,, कृ० १४	,, जु० ६ मं०
भारौल	,, ,, कृ० १४	,, जु० ६ मं०	,, ,, कृ० ३०	,, जु० ७ बु०
६ मेरठ	सं० १९३७ आषाढ़ शु० १	सन् १९८० जु० ८ बृ०	सं० १९३७ भाद्र शु० १३[1]	सन् १९८० सि० १६[1] बृ०
मुजफ्फरनगर	,, भाद्र शु० १३[1]	,, सि० १६[1] बृ०	,, आश्विन कृ० १३	,, अक्टू० २ श०
७ मेरठ	,, आश्विन कृ० १३	,, अक्टू० २ श०	,, ,, शु० ३	,, अक्टू० ६ बु०
५ सहारनपुर	,, ,, शु० ३	,, ,, ६ बु०	,, ,, ,, ३	,, ,, ६ बु०
३ देहरादून	,, ,, शु० ४	,, ,, ७ बृ०	,, मार्ग० कृ० ४	,, नव० २१ र०
अलीगढ़ (कोयल)[2]	,, मार्ग० कृ० ५	,, नव० २२ सोम	,, ,, कृ० ५, ६	,, ,, २२, २३
मेरठ	,, ,, कृ० ५, ६[3]	,, ,, २२, २३[3]	,, ,, कृ० ९	,, ,, २६ शु०
३ आगरा	,, ,, कृ० १०	,, ,, २७ श०	,, फाल्गुन शु० १०	१८८१ मार्च १० बृ०
भरतपुर	,, फाल्गुन शु० १०	१८८१ मार्च १०	,, चैत कृ० ५	,, मार्च २० र०
जयपुर	,, चैत कृ० ५	,, मार्च २० र० बृ०	१९३८ वैशाख शु० ६	,, मई ४ बु०
६ अजमेर	१९३८ वैशाख शु० ७	,, मई ५ बृ०	,, आषाढ़ कृ० १२	,, जून २३ बृ०
२ नसीराबाद	,, आषाढ़ कृ० १२	,, जून २३ बृ०	,, ,, ,,	,, ,, ,,
२ मसूदा	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,, भाद्र कृ० ९	,, अगस्त १८ बृ०
१ ब्यावर	,, भाद्र कृ० ९	,, अगस्त १८ बृ०	,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,
१ हरीपुर स्टेशन	,, ,, ,, १०	,, ,, १९ शु०	,, ,, ,, १०	,, ,, १९ शु०
२ ब्यावर	,, ,, शु० १५[4]	,, ,, ९[4]	,, आश्विन कृ० १३	,, नव० २१ बुध

१. जीवन चरितों में १५ सितम्बर को मुजफ्फरनगर पहुँचना लिखा है, परन्तु भाद्र सुदी १२ बुधवार तदनुसार १५ सितम्बर के पत्र में (पूर्ण संख्या २७८ पृष्ठ २३५) ऋ० द० ने हम कल ४ बजे की रेल में बैठकर मुजफ्फरनगर जायेंगे, ऐसा स्पष्ट निर्देश किया है। अत: १६ सितम्बर को ही मेरठ से चलना और मुजफ्फरनगर पहुँचना ठीक है।

२. जीवन चरितों में अलीगढ़ (कोयल) जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु ऋ० द० ने पूर्ण संख्या ३३४ (पृष्ठ २७६) के पत्र में 'हमने अलीगढ़ पहुँचकर........२२ नवम्बर १८८० को रजिष्टरी चिट्ठी इस विषय की भिजवाई' स्पष्ट लिखा है। अत: पत्रानुसार हमने यहाँ अलीगढ़ का निर्देश किया है। जी० चरितों में २१-२६ नवम्बर तक मेरठ निवास करना लिखा है, वह अशुद्ध है। अथवा यह भी सम्भव है कि देहरादून से २० नवम्बर को चलकर २१ को पहुँचे हों और २२ को कुछ काल के लिये अलीगढ़ आकर उक्त रजिस्टर्ड पत्र भिजवा दिया हो। उभयथा भी अलीगढ़ का निर्देश होना आवस्यक है।

३. देखो इसी पृष्ठ की पूर्व.......संकेतित टिप्पणी का उत्तरार्ध।

४. जी० च० के अनुसार हरिपुर स्टेशन से १० बजे चलकर १२ बजे के पश्चात् ब्यावर स्टेशन पर

३ मसूदा	,, आश्विन कृ० १३	,, सित० २१ बु०	,, ,, शु० १४	,, अक्टू० ६ बृ०
हुरड़ा	सं० १९३८ आश्विन शु० १४	सन् १८८१ अक्टू० ६ बृ०	सं० १९३८ आ० शु० १५	सन् १८८१ अक्टू० ७ शु०
रूपाहेली	,, ,, शु० १५	,, ,, ७ शु०	,, कार्तिक कृ० १	,, ,, ८ श०
रायला (राटेरा)	,, कार्तिक कृ० १	,, ,, ८ श०	,, कृ० ३	,, ,, १० सो०
बनेड़ा	,, ,, कृ० ३	,, ,, १० सो०	,, शु० ४	,, ,, २६ बु०
भीलवाड़ा	,, ,, शु० ४	,, ,, २६ बु०	,, ,, ,,	,, ,, ,,
सोनियाना	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, शु० ५	,, ,, २७ बृ०
१ चित्तौड़	,, ,, शु० ५	,, ,, २७ बृ०	,, पौष कृ० ३०	,, दिस० २१ बु०
२ इन्दौर	,, पौष कृ० ३०	,, दिस० २१ बु०	,, ,, शु० ६	,, ,, २७ मं०
[[1]	,, ,, शु०	,, दिस०	,, ,, शु०	,, दिस०
५ बम्बई	,, ,, शु० १०	,, ,, ३० शु०	१९३९ आषाढ़ शु० ८	१८८२ जून २४ श०
खण्डवा	१९३९ आषाढ़ शु० ८	१८८२ जून २४ श०	,, श्रावण कृ० ४	,, जुलाई ४ मं०
३ इन्दौर	,, श्रावण कृ० ४	,, जुलाई ४ मं०	,, ,, कृ० ५[2]	,, ,, ६[2]
रतलाम	,, ,, कृ० ६	,, ,, ६ बृ०	,, ,, कृ० ८	,, ,, ८ श०
जावरा	,, ,, कृ० ८	,, ,, ८ श०	,, ,, शु० ९[3]	,, ,, २४[3] सो०
२ चित्तौड़	,, ,, शु० १०	,, ,, २५ मं०	,, ,, (द्वि०) कृ० ११	,, अग० ९ बु०
१ निम्बाहेड़ा	,, ,, (द्वि०) कृ० ११	,, अग० ९ बु०	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,

पहुँचे। भारतीय ज्योतिष के अनुसार १२ बजे रात्रि के बाद भी पूर्व तिथि ही मानी जाती है, अत: हमने तिथि का निर्देश पञ्चाङ्गों के अनुसार किया है, परन्तु तारीख १२ बजे रात के बाद बदल जाती है, अत: तारीख का निर्देश अंग्रेजी ढंग पर ८ सितम्बर के बदले ९ सितम्बर किया है। वार का निर्देश हमने यहाँ नहीं किया, क्योंकि पंचाङ्ग के अनुसार बृहस्पति ही था, परन्तु अंग्रेजी तारीख के अनुसार शुक्र प्रारम्भ हो गया था।

१. इन्दौर से २७ सितम्बर को रवाना होकर ३० सितम्बर को बम्बई पहुँचने का उल्लेख जीवन चरितों में मिलता है। इन्दौर से बम्बई का मार्ग उस समय लगभग ३० घण्टे का रहा होगा। अत: मार्ग में एक या डेढ़ दिन ऋषि दयानन्द कहाँ ठहरे, यह अज्ञात है।

२. ऋषि दयानन्द रात की दो बजे की गाड़ी से रतलाम के लिए रवाना हुए थे पञ्चाङ्ग के अनुसार ता० ६ के सूर्योदय से पूर्व तक पञ्चमी का निर्देश और तारीख के निर्देश में अंग्रेजी पद्धति के अनुसार ६ का निर्देश किया है। पृष्ठ ४९ की ...... संकेतित टिप्पणी प्रथम पंक्ति भी देखें।

३. जावरा से चित्तौड़गढ़ समीप ही है। अत: हमारे विचार में जावरा से ऋ० द० श्रावण शु० १० जुलाई २५ मंगल को रवाना होकर उसी दिन किसी समय चित्तौड़ पहुँच गये होंगे। हमारे विचार की पुष्टि पूर्ण संख्या ४३१ के २६ की अन्तिम पंक्ति और पूर्ण संख्या ४३२ के पत्र से भी होती है।

उदयपुर	,, ,, ,, कृ० १२, १३[१]	,, ,, १०, ११[१] बृ० शु०	फाल्गुन कृ० ६	१८८३ फर० २८ बु०
२ निम्बाहेड़ा	,, फाल्गुन कृ० ७	१८८३ मार्च १ बृ०	,, ,, कृ० ७	,, मार्च १ बृ०
३ चित्तौड़	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, कृ० १३	,, ,, ७ बु०
२ रूपाहेली	,, ,, कृ० १४	,, ,, ८ बृ०	,, ,, कृ० १४	,, ,, ८ बृ०
शाहपुरा	,, ,, कृ० १४	,, ,, ८[२] बृ०	१९४० ज्येष्ठ कृ० ४	,, मई २६ श०
७ अजमेर	सं० १९४० जेष्ठ कृ० ५[३]	सन् १८८३ मई २७[३] र०	सं० १९४० ज्येष्ठ कृ० ६, ७	सन् १८८३ मई २८ सो०
१ पाली	,, ,, कृ० ८	,, ,, २९ मं०	,, ,, कृ० ९	,, ,, ३० बु०
१ रोपट	,, ,, कृ० ९	,, ,, ३० बु०	,, ,, कृ० ९	,, ,, ३० बु०
जोधपुर	,, ,, कृ० १०	,, ,, ३१ बृ०	,, आश्विन शु० १५	,, अक्टू० १६ मं०
२ रोपट	,, कार्तिक कृ० १	,, अक्टू० १७ बु०	,, ,, कार्ति० कृ० २, ३	,, अक्टू० १८ बृ०
२ पाली	,, ,, कृ० २, ३	,, ,, १८ बृ०	,, ,, कृ० ५	,, अक्टू० २० श०
३ आबू	,, ,, कृ० ६	,, ,, २१ र०	,, ,, कृ० ११	,, ,, २६ शु०
अजमेर	,, ,, कृ० १२	,, ,, २७ श०	,, ,, कृ० ३०	,, ,, ३० मं०

१. जीवन चरितों में श्रावण द्वितीय कृष्णा १३ अगस्त ११ शुक्र को उदयपुर पहुँचना लिखा है, परन्तु पूर्ण संख्या ५१४ के पत्र से प्रतीत होता है कि वे सम्भवत: श्रा० द्वि० कृ० १२ अगस्त १० को ही उदयपुर पहुँच गये थे।

२. जीवन चरितों में फाल्गुन कृष्ण ३०=९ मार्च को शाहपुरा पहुँचना लिखा है, परन्तु पूर्ण संख्या ४८४ के अनुसार फा० कृ० १४=८ मार्च को शाहपुरा पहुँचे होंगे।

३. पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवन चरित के अनुसार २८ मार्च को अजमेर पहुँचने और २९ को १२ बजे की गाड़ी से रवाना होने का उल्लेख है (पृष्ठ ६९३, ६९४), परन्तु वह अशुद्ध है। पूर्ण संख्या ५२३ के पत्र में ऋ० द० ने ज्येष्ठ वदी ६=२८ मार्च के पत्र में 'कल (=२७ मार्च) संध्या के समय में अजमेर पहुँच गये', ऐसा स्पष्ट लिखा है और उसी दिन आधी रात की गाड़ी से पाली जाने का निर्देश किया है।

परिशिष्ट-१

मौलवी महेशप्रसाद-राहुल सांकृत्यायन के संस्मरण

जीवन में सबसे अधिक प्रभाव मेरे ऊपर मौलवी महेशप्रसाद का पड़ा। राजनीति और देशभक्ति के विचारों से १९१४ तक मैं बिल्कुल अपरिचित था। १९१५ के आरम्भ में मुसाफिर विद्यालय 'आगरा' में दाखिल होने पर मौलवी महेशप्रसाद के घनिष्ठ सम्पर्क में एक वर्ष से अधिक समय तक रहना पड़ा। इसी समय अन्धे को आँख मिलने की तरह दुनिया को देखने की आँख मुझे भाई साहब की कृपा से मिली। वह उस समय मुसाफिर विद्यालय में अरबी अध्यापक थे। हम सब लोग उन्हें भाई साहब कहा करते थे। अभी 'मौलवी आलिम-फाज़िल' की उपाधि उन्हें प्राप्त नहीं हुई थी। हम दोनों की उमर में दो-चार ही वर्ष का अन्तर होगा इसलिए आत्मीयता स्थापित करने में आयु बाधक नहीं हो सकती थी। मुसाफिर विद्यालय का नाम सुनकर, आर्यसमाजी विचारों से प्रभावित मैं प्रयाग के माघ मेले से आगरा पहुँचा। प्रयाग में किसी ने कहा भी कि लिखा-पढ़ी करके पहले भर्ती के बारे में निश्चय हो जाने पर जाइये। लेकिन अब छोटा-मोटा घुमक्कड़ बन चुका था, इसलिए मुझे भय नहीं मालूम हुआ कि यदि विद्यालय में भर्ती नहीं हुई, तो क्या होगा। मुसाफिर विद्यालय में भर्ती होने में कोई दिक्कत नहीं हुई। मैं वहाँ के सभी विद्यार्थियों से अधिक संस्कृत जानता था, उर्दू मिडिल पास था और बोलने-चालने, देखने-सुनने में भी प्रभाव रखता था।

भाई साहब हमें अरबी पढ़ाते थे। विद्यालय के कोर्स में जितनी संस्कृत थी, उससे कहीं अधिक मैं जानता था, इसलिए मुझे उसके पढ़ने से छुट्टी थी। अरबी की पढ़ाई के बाद दूसरी शिक्षा थी भाषण और शास्त्रार्थ की, जो अधिकतर प्रयोग रूप में होती थी। अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिये सभी पुस्तकें हमारे पाठ्यक्रम में थीं। मुसाफिर विद्यालय तथा पं० भोजदत्त के उर्दू साप्ताहिक 'आर्य मुसाफिर' के

कार्यालय में जितनी भी पुस्तकें थीं, सबको मैंने पढ़ लिया। आर्यसमाज, वैदिक धर्म और स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों के प्रचार करने पर बहुत जोर देता था। स्वामी दयानन्द ने देशभक्ति और देश को स्वतन्त्रता का सन्देश अपने ग्रन्थों में दिया था, इसलिए देशभक्ति का वह स्वागत करता था। प्रथम विश्वयुद्ध का आरम्भिक समय था। आर्यसमाज के राष्ट्रीय भावों की भनक अंग्रेजी अधिकारियों को लग गई थी, इसलिए यह आर्यसमाज और उसके उपदेशकों को सन्देह की दृष्टि से देखते थे। इस वातावरण में आकर्षण राष्ट्रीयता की ओर होना स्वाभाविक था। उसके लिये किसी का पथ–प्रदर्शन प्राप्त हो, तो सालों की मंज़िल महीनों में हो सकती थी, और हमारे लिये ऐसे पथ–प्रदर्शक थे, भाई महेशप्रसाद।

महेशप्रसाद का जन्म इलाहाबाद जिले में कायस्थान कस्बे में हुआ था। मैट्रिक पास कर पुलिस सब–इन्सपैक्टर बनने की बात करीब–करीब तय हो गई थी, किन्तु प्रयाग में पढ़ते वक्त वह उग्र देशभक्तों के सम्पर्क में आये थे, जिसके कारण घर का आग्रह रहने पर भी उन्होंने पुलिस की नौकरी पसन्द नहीं की। और आर्यसामाजिक विचारों के कारण आर्य मुसाफिर विद्यालय में अरबी पढ़कर उपदेशक बनने के लिए आगरा चले गये। मुसाफिर विद्यालय से निकलने वाले स्नातकों में वे और पं० धर्मवीर मेरठी थे। वे न वक्ता थे और न लेखक पर शिष्य के सारे गुण उनमें थे। जल्दी किसी के ऊपर प्रभाव नहीं डाल सकते थे पर जो प्रभाव उनका पड़ता, वह बड़ा पक्का होता था। पढ़ाई समाप्त करने के बाद विद्यालय में उन्हें अरबी का अध्यापक बना दिया था। उस समय प्रयाग से उर्दू में 'हिन्दुस्तान' नामक एक उग्र राष्ट्रीयतावादी पत्र निकलता थे। प्रसिद्ध था कि उसके सम्पादक जेल की हवा खाने के लिए ही भर्ती होते हैं। इन सम्पादकों में से एक महात्मा नन्दगोपाल थे जिनका प्रभाव भाई साहब पर बहुत पड़ा था। अम्बाप्रसाद सूफी (क्रान्तिकारी) और भी कितने ही देशभक्तों के जीवन से उन्हें देशभक्ति की शिक्षा मिली थी।

हमें पाठ्यपुस्तकों से अधिक इन बातों को भाई साहब बतलाया करते थे। विद्यालय के संस्थापक पं० भोजदत्त अब बुढ़ापे और रोग के कारण कुछ नहीं कर सकते थे। विद्यालय का सारा भार उनके पुत्र डॉ० लक्ष्मीदत्त पर था जो आबिर अकबराबादी के नाम से उर्दू में शेर

कहते थे। उनकी कविताओं में काफी गर्मी रहती थी। वे यह नहीं जानते थे कि विद्यालय उनके विचारों के कारण ख़तरे में पड़ जाएगा पर उनकी तरफ से हमारे रास्तों में कोई बाधा भी नहीं थी।

भाई साहब ने हमें आँख दी, देश पुकार सुनने के लिए कान दिये, प्राणदान देकर भी हुतात्माओं के अनुकरण करने की प्रवृत्ति दी। भाई साहब केवल स्वदेशी और मोटा कपड़ा पहनते थे। उनके बिना कहे ही हमने इस बात में उनका अनुसरण किया। मुसाफिर विद्यालय से निकलते समय १९१६ की फरवरी में अब मैं दूसरा ही था।

यद्यपि मैं अब आर्यसमाज का उपदेशक बन सकता था और मुझे वैसा करना भी था, किन्तु विद्या की पिपासा मुझे खींच कर लाहौर ले गई जो आर्यसमाज का गढ़ और प्रधान केन्द्र था। वहाँ पहुँचने पर मैंने भाई साहब को लिखा और वे भी अरबी ज्ञान को बढ़ाने के लिए लाहौर चले आये। उन्होंने कुछ साल लगाकर पंजाब यूनीवर्सिटी की अरबी परीक्षा मौलवी फाज़िल पास की। यह परीक्षा पास करने वाले वे प्रथम हिन्दू थे। लाहौर में भाई साहब से हमारा सम्पर्क रहा। वे अपने पढ़ने में एकाग्र होकर डटे रहने के कारण इधर उधर जाने का नाम नहीं लेते थे। पर घुमक्कड़ी धर्म में दीक्षित होने के कारण मेरे छः महीने भी एक जगह रहना पाप था। भाई साहब को जो देना था, मेरे जीवन में जो परिवर्तन लाना था वह सब कर चुके थे। पढ़ाई समाप्त करने के बाद हिन्दू विश्वविद्यालय में उन्हें अरबी, फारसी पढ़ाने का काम मिल गया और यही काम करते करते उन्होंने अपने जीवन को समाप्त किया। बनारस जाने पर मैं उनके दर्शन करता था। वे अन्तिम समय तक आर्यसमाज के सिद्धान्तों में विश्वास रखते थे और उत्सवों में व्याख्यान देने जाते थे। मेरे आर्यसमाज, वेद और ईश्वर सबसे मुक्त होने पर (विश्वास खोकर) भी उस साधु पुरुष के प्रति मेरी श्रद्धा में कोई अन्तर नहीं आया था।'' यह सर्वविदित है कि राहुल सांकृत्यायन ने आर्यसमाज छोड़कर बौद्धभिक्षु का बाना धारण किया। कालान्तर में वे कम्युनिष्ट हो गये और मार्क्सवाद के प्रति प्रबल आस्था रखने वाले साम्यवादी बने। सत्य है—नाना रूप धरा कौलाः विचरन्ति महीतले।''

—सम्पादक

परिशिष्ट-२

श्री स्वामीजी के ईसाई सत्संगी

श्री स्वामीजी महाराज के साथ अनेक देशी-विदेशी ईसाइयों ने शास्त्रार्थ किया था। अनेक केवल सत्संग के विचार से उनसे मिले थे अथवा मिलते थे। अत: किसी न किसी रूप में जिन ईसाइयों के साथ मिलन हुआ था, उनमें कुछ साधारण कोटि के व्यक्ति थे किन्तु कुछ उच्चकोटि के थे और उनके द्वारा भारत में ईसाइयत का बहुत काम हुआ है। ऐसे लोगों में से केवल चार के विषय में कुछ लिखा जाता है—

१. पादरी हूपर साहिब पहले सन् १८७४ ई० में काशी में श्री स्वामीजी से मिले थे। इसके पश्चात् लाहौर में १९८७ ई० में मिले थे। इनका पूरा नाम विलियम हूपर था। सन् १८३७ ई० में २१ सितम्बर को इंग्लैंड में पैदा हुए थे। सन् १८५९ एम० ए० की डिग्री प्राप्त की थी।

सन् १८७१ ई० में भारत में पधारे। काशी व लाहौर में विशेष रूप में काम किया। इनकी कई रचनाएँ हैं, जिनमें दो मेरी दृष्टि में अवश्य आई हैं।

(क) हिन्दू धर्म का वर्णन—इसमें बतलाया गया है कि हिन्दू धर्म क्या वस्तु है, वेद का वर्णन, जाति का वर्णन; अवतारों आदि का वृत्तान्त है। इसके कई संस्करण हिन्दी में निकले हैं।

(ख) स्वराष्ट्रीय हिन्दू और मुहम्मदी धर्मों के अनुसार उद्धार का सिद्धान्त, उद्धार किससे होता है ? पाप का विषय। पवित्र आत्मा के विषय आदि इसमें आते हैं। इसका एक हिन्दी संस्करण मेरी दृष्टि में अवश्य आया है।

२. पादरी उलमन—श्री स्वामीजी से कुछ साथियों सहित कायमगंज (जिला-फर्रुखाबाद) में सन् १८६८ ई० में मिले। महर्षि दयानन्द का जीवन-चरित्र, पृष्ठ १३१ (प्रकाशित सम्वत् १९९०

वि० अजमेर) इनका नाम अनलन दिया हुआ है। यह ठीक नहीं।

पादरी साहिब का पूरा नाम फैड्रिक उलमन (ULLMANN) था। सन् १८१७ ई० में बर्लिन में पैदा हुए थे। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् सन् १८२९ ई० में भारत में पधारे। अनेक स्थानों में कार्य किया। इनकी अनेक रचनाएँ गुरु, तान, लड़कों की गीत माला, धर्म तुला आदि हैं। इनमें से धर्म तुला का प्रचार हिन्दी व उर्दू दोनों में बहुत हुआ है। उर्दू में सन् १९४१ ई० तक १३ बार प्रकाशन हो चुका है। हिन्दी में सन् १९३८ ई० तक ४४ संस्करण निकल चुके हैं। यह संस्करण दस हजार की संख्या में निकला है।

३. पादरी स्काट—इनका मिलना श्री स्वामीजी से सबसे पहले चाँदापुर जिला (शाहजहाँपुर) के मेले में सन् १८७७ ई० में हुआ था। इसके पश्चात् बरेली में इन्होंने श्री स्वामीजी के साथ सन् १८७९ ई० में शास्त्रार्थ किया था और श्री स्वामीजी से मिला भी करते थे।

श्री स्वामीजी के अनेक जीवन चरित्रों में इनका नाम टी० जी० स्काट लिखा हुआ मिलता है, किन्तु टी० जे० स्काट (Thomas Jefferson Scott) चाहिए। सन् १८३५ ई० में संयुक्त राज्य अमेरिका में पैदा हुये थे। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् सन् १८६३ ई० में भारत पधारे। कई स्थानों में कार्य किया।

ईसाई उपदेशक विद्यालय बरेली में १६ वर्ष तक शिक्षक रहे। इस काल में १२ वर्ष तक प्रिंसिपल का कार्य किया। अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं किन्तु इनका महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि इण्डिया सन् डे स्कूल यूनियन को इन्होंने सन् १८७६ ई० में स्थापित किया।

४. पादरी क्लार्क—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित पृष्ठ ४७७ से पता चलता है कि अमृतसर में सन् १८७३ ई० में पादरी क्लार्क साहब से और महाराज से खान-पान के विषय में बातचीत हुई थी। ज्ञात रहे कि क्लार्क नाम के कई पादरी हुए हैं। किन्तु यहाँ पर राबर्ट क्लार्क समझना चाहिए क्योंकि इनका सम्बन्ध अमृतसर से विशेष रूप से रहा है और उक्त काल में वह अमृतसर में ही थे।

सन् १८२५ ई० में इनका जन्म इंग्लैण्ड में हुआ था। सन् १८५१ ई० में अमृतसर में आए। पंजाब व काश्मीर में विशेष रूप से काम किया। जॉन की इंजील को किश्तों में अनुवाद किया, किन्तु इनकी

रचना Thirty years of Missionary work of the C. M. S. in the Panjab & Sindh बड़े मारके की है।

उक्त ईसाई पादरियों के सिवा बेरी, लूकस, पार्कर, नोबिल, मैथर, बैरिंग, गरे, गिलबर्ट, हसवैण्ड, लालबिहारीदे और और नीलकण्ठ शास्त्री (महीमिया गोरे) आदि अनेक बड़े-बड़े ईसाइयों के साथ सत्संग हुआ था। केवल थोड़े से व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय ऊपर दिया है। अब मैं अन्त में ऐसे ग्रन्थों का परिचय देना चाहता हूँ, जिनके आधार पर मैंने उक्त शब्द लिखे हैं ताकि अधिक जानने के निमित्त लोगों को कुछ सुगमता हो—

१. The Indian Missionary Dictionary, लेखक Rev. B. H. Badly, संशोधित संस्करण सन् १८८२ ई० से मैथाडिस्ट पब्लिशिंग हाऊस से मुद्रित।

२. History of A. P. Missions, India. सन् १८८६ ई० में मिशन प्रैस इलाहाबाद से मुद्रित। इसमें सन् १८३४ से १८८४ ई० तक का वृत्तान्त है। लेखक का नाम अंकित नहीं है।

—महेशप्रसाद मौलवी

परिशिष्ट–३

दयानन्द काल और ईसाइयत

(लेखक–श्री महेशप्रसादजी मौलवी आलिम फाज़िल हिन्दू विश्वविद्यालय काशी)

श्री स्वामी दयानन्दजी का जन्म सन् १८२४ ई० में हुआ। सन् १८६३ ई० में उन्होंने प्रचारकार्य प्रारम्भ किया। सन् १८८३ ई० में मृत्यु हुई। अतः स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी से ही उनका विशेष सम्बन्ध रहा।

इतिहासों में स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दी ऐसी है जबकि भारत में मुसलमानों का पतन हो रहा था और ईसाई लोग राष्ट्रीय व धार्मिक दोनों रूप में तेजी के साथ बढ़ रहे थे। नाना प्रकार के कष्टों को सहते हुए यूरोप व अमेरीका के अनेक ईसाई (स्त्री–पुरुष) भारत में कार्य करने के निमित्त आये। इनमें से अधिकांश यहीं मरे और अपने आप को भारत भूमि के अर्पण कर दिया।

भारत में उस समय अंग्रेजों की शक्ति राष्ट्रीय दृष्टि से बढ़ रही थी। इस कारण ईसाई पादरी अच्छा अवसर पाकर ईसाई मत प्रचारार्थ आये। उस समय जर्मनी, इटली, स्पेन, फ्रांस, अमेरिका आदि के ईसाई यहाँ आये। वास्तव में यह राष्ट्रीय समस्या न थी बल्कि धार्मिक व सांस्कृतिक प्रश्न था जिसके कारण अनेक देशों के ईसाई केवल भारत में नहीं बल्कि संसार के अनेक देशों अथवा स्थलों में फैले थे।

सन् १८०६ ई० में जर्मनी के पादरी हेनरी मारटिन आये। जर्मनी निवासी पादरी फण्डर सन् १८४० ई० में आये। अमेरीका के पादरी जानसन सन् १८६० में आये। उन्होंने नाना प्रकार के उपायों से कार्य किया। किसी ने शिक्षा–प्रचार को अपने उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त साधन बनाया। किसी ने चिकित्सा कार्य के द्वारा अपना कार्य करना मुख्य जाना।

ईसाइयों के परिश्रम का ही फल था कि अनेक अच्छे–अच्छे हिन्दू व मुसलमान ईसाई हो गये और फिर उनके द्वारा प्रचार, शिक्षा

व साहित्य आदि के कामों में बड़ा कार्य हुआ। जो लोग ईसाई हुए उकी सूची तो वास्तव में बड़ी लम्बी ठहरती है, केवल थोड़े से नाम ये हैं—

१.	शेख़ सालेह	१७६५-१८२७	१८१७
२.	सुजात अली	१७८१-१८६५	१८२४
३.	कृष्णमोहन बनर्जी	१८१३-१८८१	१८३२
४.	जेकबराम वर्मा	१८१५-१८५४	१८३५
५.	धानजीभाई नौरोजी	१८२२-१९०८	१८३९
६.	होरमजदजी पेस्टनजी	१८२०-१८९१	१८३०
७.	माइकेल मधुसूदनदत्त	१८२४-१८७३	१८४३[१]
८.	नारायण शेषाद्रि	मृत्यु १८९१	१८४३
९.	लालबिहारी डे	१८२४-१८९४	१८४३
१०.	शिवचन्द बैनरजी	१८३०-१८९२	१८४७
११.	नीलकण्ठ शास्त्री	१८२५-१८९५	१८४८[२]
१२.	रामचन्द्र वसु	१८२१-१८८०	१८५२[३]
१३.	कालीचरण चैटरजी	१८३९-१९१६	१८५४
१४.	तालिबउद्दीन	(... ...)	१८६२
१५.	सफदरअली	(... ...)	१८६५
१६.	इमादउद्दीन	१८३०-१९००	१८६६
१७.	पूर्णचन्द उप्पल	१८४६-१९३०	१८६६
१८.	दीनानाथ	(मत्यु १८८८)	१८७७
१९.	मुहम्मद हनीफ	(... ...)	१८७८
२०.	रमाबाई	(१८५६ जन्म काल)	१८८३[४]

इन लोगों का संक्षिप्त परिचय भी दिया जा सके इस बात के लिये यहाँ स्थान नहीं। केवल दो चार के विषय में कुछ बतलाया जा

---

१. बंगला के प्रसिद्ध कवि तथा मेघनादबध महाकाव्य के रचयिता।
२. प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय संस्कृतज्ञ विद्वान् जन्मना-गोरे (ब्राह्मण)।
३. दिल्ली कॉलेज में गणित के अध्यापक।
४. संस्कृत की विदुषी तथा स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में आई महिला।

रहा है—शेख़ सालेह साहब का नाम ईसाई होने पर अब्दुल मसीह हुआ था। इन्होंने अध्यापन व प्रचार किया था और अन्तिम दिन आगरा में बिताया था। शुजाअतअली अरबी-फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। इनके उद्योग से बहुत से लोग ईसाई हुये थे। कृष्णमोहन बनर्जी एक उच्च कुल में पैदा हुये थे। अपनी उच्च शिक्षा के कारण बिशप कॉलिज कलकत्ता में प्रोफेसर हो गये थे। यूनीवर्सिटी के फेलो बने थे। सन् १८७६ ई० में डाक्टर ऑफ लॉ की उपाधि से विभूषित किये गये थे। संस्कृत, हिन्दी, तमिल और उड़िया के भी अच्छे ज्ञाता थे।

इनकी कई उत्तम रचनाएँ हिन्दू-धर्म के विषय की हैं।

लालबिहारी डे[१] हुगली कॉलिज में इतिहास के प्रोफेसर हो गये थे। श्री स्वामीजी से कई बार मिले थे। गोविन्द सामन्त नाम का इनका एक उपन्यास बंगला में एक ग्रन्थ है। नीलकण्ठ शास्त्री काशी के एक ब्राह्मण थे। संस्कृत के अच्छे पण्डित थे। हिन्दू दर्शन शास्त्र के खण्डन में इनका एक ग्रन्थ हिन्दी व अंग्रेजी दोनों में छपा है। रामचन्द्र दिल्ली के निवासी थे। गणित के अच्छे ज्ञाता थे। इमादउद्दीन अरबी फारसी ख़ूब जानते थे। पानीपत के निवासी थे। ईसाई होने के पश्चात् इन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध कई ग्रन्थों को लिखा था। पण्डिता रमाबाई का उल्लेख श्री स्वामीजी के पत्रों में भी आया है। ईसाई मत ग्रहण करने के पश्चात् इन्होंने बहुत काम किया। वे एक कॉलिज में संस्कृत की अध्यापिका बनी थीं। अमेरिका में भी यह गई थीं। बम्बई में एक आश्रम सन् १८८९ ई० में स्थापित किया। कुछ काल के पश्चात् पूना में उसे ले आईं।

विशेषरूप से छान-बीन करने पर पता चलता है कि ईसाइयों की जो संस्थाएँ भारत में कार्य कर रही हैं उनमें से अधिकांश ऐसी हैं जो कि उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी में स्थापित हुई थीं। ऐसी दशा में भली-भाँति कुछ-न-कुछ समझा जा सकता है कि श्री स्वामीजी महाराज किस समय कार्यक्षेत्र में थे, उस समय भारत में ईसाइयत की क्या दशा थी और उनके सन्मुख क्या परिस्थिति उपस्थित थी।

—o—

१. हुगली में इनका स्वामीजी से वार्तालाप तथा वर्ण व्यवस्था पर विचार विनिमय हुआ था।